साहित्य आणि पर्यावरण

संपादक

प्रा. डॉ. अरुण माधवराव चव्हाण

संस्कृत विभाग प्रमुख, कै. लक्ष्मीबाई देशमुख महिला महाविद्यालय,
परळी वैजनाथ

उपसंपादक

प्रा. डॉ. मनीषा विजयकुमार तांदळे

यशवंत महाविद्यालय, नांदेड.

प्रा. शिल्पा शिवाजीराव एमेकर

सायन्स महाविद्यालय, नांदेड.

सिध्दी पब्लिकेशन हाऊस, नांदेड.

ISBN No. 978-81-962287-5-0

साहित्य आणि पर्यावरण

संपादक

प्रा. डॉ. अरुण माधवराव चव्हाण

ˆ¯Ö संपादक

प्रा. डॉ.मनीषा विजयकुमार तांदळे

प्रा. शिल्पा शिवाजीराव एमेकर

प्रकाशक

सिध्दी पब्लिकेशन हाऊस

६२४, बेलानगर, भावसार चौक,

तरोडा (खु.) नांदेड - 431605

´ÖÖ. 9623979067

www.wiidrj.com

मुद्रक

अनुपम प्रिंटर्स, श्रीनगर, नांदेड (महा.)

91753324437

¯Ö£Ö´ÖÖ¾Ö¢Öß :26 ÃÖ¯™²Ö¸ 2023

©सर्वाधिकार : lo vf/kdkj l iknd kP;k uko

मुखपृष्ठ : तेजस रामपूरकर

अक्षरजुळवणी : ÃÖÖ. ¯Ö»»Ö¾Öß ¿Ö™

´Ö»µÖ : 400/-

सदरील ग्रंथातील कोणताही भाग किंवा मजकुराकरीता सदरील संशोधक स्वतः जबाबदार राहतील संपादक किंवा प्रकाशक जबाबदार असणार नाही.

:: ¿Ö³ÖÖ×¿Ö¾ÖÖ¤ ::

संस्कृत, मराठी, हिंदी आणि इंग्रजी या चारही भाषेतील विद्वानांचे शोधलेख "साहित्य आणि पर्यावरण" या पुस्तकात प्रकाशित करण्यात येत आहेत याचा मला मनस्वी आनंद होत आहे. आधुनिक काळात पर्यावरणाचा अनमोल महत्त्व आणि आवश्यकता समाजातील प्रत्येक घटकाला आवश्यक आहे. वाङ्गमयात वर्णन करण्यातआलेले पर्यावरण हे आजही किती उपयुक्त आहे आणि राहणार आहे याविषयी पूर्वसरींचा आढावा घेत शोधनिबंध उत्तम पद्धतीने मांडण्यात आलेले आहेत. सर्व अभ्यासकांचे मनःपूर्वक हार्दिक अभिनंदन आणि शुभाशीर्वाद.

वेदवाङ्गमय ते आधुनिक साहित्य हा प्रवास शोधनिबंधाच्या माध्यमातून प्रकाशित करण्यासाठी डॉ. गणंजय कहाळेकर, डॉ. अरुण चव्हाण, डॉ. मनिषा तांदळे, प्रा. शिल्पा एमेकर तसेच प्रकाशक, सिद्धी प्रकाशन हाऊस, नांदेडचे यांनी केलेल्या कार्याबद्दल त्यांचे अभिनंदन करतो.

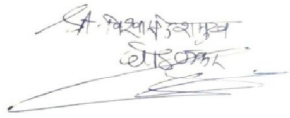

वे.मू. श्री. विश्वासशास्त्री देशमुख घोडजकर

संस्थापक

प्राच्य विद्या परिषद् संचलित

श्री दुर्गा पाठशाळा, नांदेड

:: शुभ संदेश ::

संस्कृत साहित्यात निसर्ग व पर्यावरण यांचे विस्तृत वर्णन आढळते. वैदिक साहित्यात सूर्य उषा नद्या भूमी वायु अंतरिक्ष आकाश अग्नी अशा निसर्ग देवतांची वर्णने आहेत. त्यामुळे वेदकाळात निसर्गाचे स्तवन, पूजन केले जात होते हे स्पष्टपणे लक्षात येते. वेदवाङ्मयात मानव व निसर्ग यांच्यातील आत्मीय व भावपूर्ण संबंध होते असे दिसून येते.

प्राचीन काळापासून आजपर्यंत मनुष्याचे जीवन निसर्गावर अवलंबून आहे. आपल्या सभोवताली असलेल्या निसर्ग घटकांची अनुकूलता व प्रतिकूलता आपणास अनुक्रमे सुखद व दुःखद असते त्यामुळे निसर्ग मानवास अनुकूल व्हावा असा मानवाचा प्रयत्न असतो. त्यातून निसर्ग पूजनाची सुरुवात झाली.

भूमी आकाश वायू जल अग्नी या पंचमहाभूतांद्वारे आपले जीवन स्थूल रूपात आकारास आले आहे. त्यामुळे या पंच तत्व प्रदूषित न होता शुद्ध राखण्याचे कार्य करणे हे माणसाचे आद्य कर्तव्य आहे. आज विविध प्रकारच्या प्रदूषणामुळे जल वायू भूमी व आकाश या चारही घटकांना आपण प्रदूषित केले आहे. त्यामुळे आपल्या सभोवतालच्या निसर्गाचा पर्यावरणाचा विचार करताना प्रदूषण टाळून पर्यावरण चांगले ठेवण्याचा प्रयत्न मनुष्याने केला पाहिजे. त्या दृष्टीने संस्कृतमध्ये आपणास डोळस करणारे विपुल वाङ्मय आहे.

वेदवांग्मय, रामायण, कालिदास, भास कवींचे साहित्य निसर्ग वर्णनांनी ओतप्रोत आहे. त्याचा आढावा विविध प्रकारच्या शोधनिबंधांच्या माध्यमातून घेण्याचा डॉ कहाळेकर सर व डॉ अरुण चव्हाण यांचा प्रयत्न स्तुत्य आहे त्याबद्दल त्यांचे अभिनंदन करते.

डॉ. क्रांती व्यवहारे
संस्कृत विभाग प्रमुख,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा
विद्यापीठ, औरंगाबाद.

:: संपादकीय ::

'संस्कृत, हिंदी, मराठी व इंग्रजी साहित्य आणि पर्यावरण' याविषयी अत्यंत उपयुक्त अशा विचाररुपी मोत्यांनी गुंफलेल्या या ग्रंथरूपी माळेला वाचकांच्या व अभ्यासकांच्या सेवेत समर्पित करताना आत्यधिक आनंद होत आहे.

भौतिक उन्नतीच्या अत्युच्च शिखरावर पाऊल ठेवताना मानवाला पर्यावरणाचा मात्र विसर पडल्याचे दिसून येत आहे. चंद्रावर व मंगळावरही वसती स्थापन करण्याची स्वप्ने मनी-मानसी बाळगताना पृथ्वीवरील वसतीच्या संरक्षणाचा वसा आणि वारसा कोण चालवणार, हा खरा प्रश्न आहे. या प्रश्नाच्या सोडवणूकीच्या दृष्टीने संस्कृत, हिंदी, मराठी व इंग्रजी साहित्यात जे चिंतन अभिव्यक्त झाले आहे त्याचा मागोवा घेण्याचा प्रयत्न प्रस्तुत पुस्तकातून झाला आहे. विविध भाषांच्या अभ्यासकांनी आपल्या सृजनात्मक चिंतनातून साकारलेले लेख या ग्रंथात समाविष्ट केलेले आहेत. ते वाचकांना निश्चितच उपयोगी पडतील व दिशादर्शक ठरतील असा विश्वास आहे.

विदुषां वशंवद:

प्रा. डॉ. अरुण चव्हाण

अनुक्रमणिका

†. क्रं.	प्रकरणाचे नांव	लेखक	0. क्रं.
1.	प्राकृतिक आपदाएँ और मानवी जीवन	प्रा. डॉ. मधुकर राऊत	09
2.	छायावादी काव्य में प्रकृति चित्रण	शिवसर्जन होनाजी टाले	13
3.	**Indian English Fiction and Environmental Problems**	**Dr. Prasad A. Joshi**	20
4.	**Reflection of Environment in the Study of English Literature**	**Dr. Hatode Kirtiratna B.**	28
5.	**English Literature and Environment**	**Prof. Shubhangi B. Barhate**	33
6.	**A Study of Inter-relationship betweenEnglish Literature and Environment**	**Prof. Hatode Rashtrapal Bapurao**	40
7.	जल संरक्षणम् अनिवार्यम्।	डॉ. गणंजय यज्ञेश्वरराव कहाळेकर	44
8.	संस्कृत – वैदिक साहित्यातील पंचतत्व आणि पर्यावरण	डॉ. मनिषा विजयकुमार तांदळे	49
9.	vfHkKku 'kkdry i;koj.k vH;kl	ik- f'kYik f'kokthjko ,edj	54

10.	संस्कृत साहित्यातील पर्यावरण विचारांची सद्यःकालीन उपयुक्तता	प्रा. डॉ. अरुण माधवराव चव्हाण	59
11.	संस्कृत साहित्य व पर्यावरण	प्रा. डॉ. बकुल भगवानराव काबंळे	69
12.	वैदिक वाङ्मय और पर्यावरण संस्कृति	प्रा. डॉ. शंकर धारबा घाडगे	77
13.	'द्यौः शान्तिः अन्तरिक्ष शान्तिः'	प्रा. गणेशकुमार सोपानराव पेठकर	114
14.	Lkr rdkjkekP;k vHkxkrhy fuIx o i;koj.k	Ikk- Mk- jke /kkjk Ijdj	121
15.	"पर्यावरण आणि शाश्वत विकास"	प्रा. कैलाश दशरथ कपाटे	125

प्राकृतिक आपदाएँ और मानवी जीवन

प्रा. डॉ. मधुकर राऊत
हिंदी विभागाध्यक्षमहात्मा ज्योतिबा फुले महाविद्यालय, मुखेड 431715

संकट एक प्राकृतिक घटना है, जबकि आपदा उसका परिणाम है। प्राकृतिक आपदा की परिभाषा ऐसी प्राकृतिक घटना जिससे न केवल मानव जीवन और उसकी संम्पति को खतरा होता है बल्कि संपुर्ण जैव-जगत के लिए विनाशकारी स्थिती उत्पन्न होती जाती है। पर्यावरण की समस्त प्रक्रियाएँ पृथ्वी की उन्तर्जात एवं बहिर्जात शक्तियों व्दारा संचलित होती है। यही वह शक्तियाँ है जो पर्यावरण की गतिशिलता का यह घटनाक्रम अनादिकाल से अनवरत रुप से चला रहा है। गतिशिलता का स्वरुप कभी विकास के रुप में तो कभी विनाश के रुप में प्रकट होता है। प्रकृति अपनी आंपरिक शक्तियों के व्दारा पृथ्वी पर स्थल रुपों के निर्माण कार्यों का संपादन करती है। भुकंप, ज्वालामुखी विस्फोट आदि ऐसे प्रक्रम है जो नवीन स्थलों का निर्माण करते है, जब कि भुस्खलन, तुफान एवं बाढ आदि बाह्य शक्तियों के विनाशकारी परिणाम है। इनके व्दारा पुर्व निर्मित स्थल रुपों का परिवर्तन कार्य संपन्न होता है। अत: प्रकृति की यह सभी घटनाएँ एक सामान्य गतिशील प्रक्रिया के रुप में चलती रहती है। परंतू मानव जाति और समाज के लिए यही घटना अभिशाप बनती है।

प्राकृतिक आपदा का संबंध मानव जाति से है। आपदा एक सामान्य घटना है जो थोडे ही समय के लिए आती है और अपने विनाश के चिन्ह लंबे समय के लिए छोड जाती है। 30 सितंबर 1993 में महाराष्ट्र के उस्मानाबाद तथा लातूर जनपद के किल्लारी में भुकंप आया था, इस प्राकृतिक घटना से मानवजाति का नुकसान हुआ। बहुत सारे लोग मिठ्ठी मे गाढे गये कुछ लोग जगपर मर गए।

इतना सारा नुकसान हुआ इसका परिणाम संपुर्ण समाज व्यवस्थापर हुआ। लंबे समय तक राहत कार्य चालू था। इसी बीच दुसरा प्रकोप बारिश का हुआ। पहले दिन भूकंप हुआ दुसरे दिन बारिश हुई इसलिए बचाव कार्य में बाधाएँ आई। इस प्रकोप में मकान गिरे, जमीन, खेती, मंदिर, मज्जिद सब का नुकसान हुआ।

इस महाप्रलयकारी घटना का संबंध आम आदमी का जीवन अस्त-व्यस्त होता है। नैसर्गिक आपदा आमतौर पर बिकट होती है और अचानक अनजाने और व्यापक पैमाने पर आक्रमण करती है। इसमें जान-माल का नुकसान होता है लोगों को चोट पहुँचती है। कठिनाईयोका सामना करना पडता है। इस घटना से स्वाथ्यपर बुरा असर पडता है। इसमें सामाजिक संरचनाओं अधिसंरचना इमारतों संचार व्यवस्था और अन्य अनिवार्य सेवाओं पर प्रभाव पडता है। इस समय प्रभावी समुदाय को भोजन, वस्त्र एवंम् आवास, चिकित्सा सुविधाएँ आवश्यक होती है। साथ में सामाजिक सुविधाओं की देखभाल की जरुरत होती है। इन जनपदों में प्राकृतिक आपदाओं का संबंध आर्थिक जीवन पर प्रभाव डालता है। प्राकृतिक आपदाएँ जो सामान्य जीवन में व्यवधान डालती है। इस में जान-माल का भारी नुकसान होता है और मनुष्य की सामान्य गतिविधियाँ गहरे रुप से प्रभावित होती है। वैसे तो देश में हुई मृत्यु नुकसान व लागत के हिसाब से आपदा की व्यापकता मापी जाती है। देश की जनता जितनी ज्यादा असुरक्षित होती है -आपदा का प्रभाव उतना ही अधिक पडता है। इन आपदाओं प्रभाव सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों पर विशेष रुप से अनुभव किया जाता है। आपदाओं से जीवन ओर संम्पति को भारी क्षति पहुंचती है। अचानक आयी आपदाओं से जहाँ मृत्यु तथा लोगों को गंभीर चोंट लगती है वहीं आवास अधिसंरचना, उद्योग, उत्पादन आदि का भारी नुकसान होता है। आपदा आने से आर्थिक व्यवस्था अपने मुख्य मार्ग विकासात्मक मुल से हटकर सुधार मुलक हो जाती है जिससे प्राथमिक उपचार आधारभूत सुविधाओं को पुन: चालू करना आदि कार्यो को प्राथमिकता दी जाती है। प्राकृतिक

आपदा अचानक आनेवाली प्राकृतिक घटनाएँ होती है जो समाज के सामान्य जीवन में अचानक व्यवधान खडा कर देती है, जिससे जान-माल का भारी नुकसान होता है और मनुष्य की सामान्य गतिविधियाँ गहरे रुप से प्रभावित होती है। वैसे तो देश में हुए मृत्यु का नुकसान और लागत के हिसाब से आपदा की व्यापकता मापी जाती है। देश की जनता जितनी ज्यादा असुरक्षित होती है आपदा का प्रभाव उतना ही अधिक पडता है। इन आपदाओं का दुष्यप्रभाव प्राय: सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों पर विशेष रुप से अनुभव किया जाता है। इन आपदाओं से जान-माल और संपत्तिओं की हानी हो सकती है। आर्थिक और सामाजिक गतविधीयों में अवरोध उत्पन्न हो सकता है। आपदा के पश्चात पुननिर्माण ओर पुनर्वास कार्ये को केवल आपदा से बचाव संबंधी गतविधीयाँ ही नहीं समझा जाना चाहिए बल्की इन्हे विकास कार्य भी मानना चाहिए। इसमें आपदा बचाव एवं विकास कार्य के अत: संबंधो से भी परिचित होना पडेगा। जो पुनर्वास एवं विकास कार्य को विकास योजना के खंड के रुप में संस्थापित करते है। इसे पुननिर्माण एवं पुनर्वास के विभिन्न तत्वों का उल्लेख भी विकास योजना के साधन के रुप में किया गया है तथा आवास इमारतों की मरम्मत एवं मजबुती ओर आपदा ग्रस्त क्षेत्रों में सामाजिक व आर्थिक पुनर्वास का विशेष रुप से उल्लेख किया जायेगा। कृषी व्यवस्था पर प्राकृतिक प्रकोप का प्रभाव, सुखा सुखा और चक्रवत की स्थिती खेती वारी को हानि और कृषी संबंधीत गतिविधियों की पुन: शुरुवात के लिए पुनर्वास के उपायों के स्वरुप पर चर्चा भूकंप, सूखा, भूस्खलन आदि मुख्य प्राकृतिक आपदाओं की देश में बढती हुई बारम्बारता के कारण लोग इनके बारे में काफी जान गये है। आपदाओं के बार-बार घटित होने से देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत अधिक दबाव पडता है। देश में वैसे ही साधनों की कमी है उस पर नियतकालीन अर्थकारी परिस्थितिओं के कारण देश के साधनों का एक मुख्य भाग सहायक कार्यो ओर आपदा से पीडित समुदायों के पुर्नवास के लिए खर्च करना पडता है।

संदर्भसुची :-

1. पर्यावरण और हिंदी साहित्य - डॉ.प्रभाकर इल्लत.
2. आधुनिक हिंदी कविता : प्रकृति और पर्यावरण - डॉ.पद्मा पाटील
3. लातूर जिल्हा समालोचन - अतुल देवळगावकर
4. लोकमत विशेषांक भुकंप - आक्टों 1993

***

छायावादी काव्य में प्रकृति चित्रण

शिवसर्जन होनाजी टाले
महात्मा ज्योतिबा फुले महाविद्यालय,मुखेड़, जि. नांदेड़,

आधुनिक हिंदी साहित्य में छायावाद अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। छायावादी कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण स्वच्छंदतावादी विचारधारा से प्रस्तुत किया है। छायावाद को 'स्वच्छंदतावाद' भी कहा जाता है। हिंदी काव्य साहित्य में सन 1918 से 1936 तक का समय छायावादी काव्य के रूप में पहचाना जाता है। छायावाद, स्वच्छंदतावाद को ही अंग्रेजी में 'रोमांटिसिजम' के नाम से जाना जाता है। हिंदी कविताओं में पहली बार स्वच्छंदतावाद विचारों का प्रवाह इसी काल में निर्मित होने लगा। इस काल को साहित्यिक खड़ी बोली का स्वर्ण युग भी कहा जाता है। इस काल के चार आधार स्तंभ थे उनमें जयशंकर प्रसाद , सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा के नाम प्रमुख रूप से लिए जाते हैं। इन चार कवियों ने हिंदी काव्य को नई दृष्टि उत्पन्न करके काल्पनिक विचारधारा से सृष्टि का सुंदर चित्र रेखांकित किया है। प्रकृति प्रेम, नारी संबंधी आदर्शवादी भावना का निर्माण, मानवीकरण, आलंबन भाव, कल्पना की प्रधानता, सांस्कृतिक जागरण आदि प्रमुख प्रवृति इस कवि की रही। सर्वप्रथम 'छायावाद' इस शब्द का प्रयोग अपने निबंध में मुकुटधर पांडे ने 'शारदा पत्रिका' में किया। छायावाद हिंदी को नए शब्द, प्रतीक, अलंकार, बिंब देता है। छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। प्रकृति का अति सूक्ष्म चित्रण छायावादी कवियों ने किया है। प्रकृति का उपरी सौंदर्य नहीं किया बल्कि प्रकृति का अंतर्गत चित्रण को यहां प्रस्तुत किया गया है। डॉ. नगेंद्र प्रकृति के भाव संबंधी मानवीकरण की प्रक्रिया के रूप में कहते हैं कि, "प्रकृति पर मानव व्यक्तित्व का

आरोप छायावाद की मूल प्रवृत्ति नहीं रही है क्योंकि स्पष्टतः छायावाद प्रकृति का व्यक्ति नहीं हैऔर उसका प्रमाण यह है कि, छायावाद में प्रकृति का चित्रण नहीं है। वरन प्रकृति के स्पर्श से मन में जो छायाचित्र उठे उसका चित्रण है।"[1] मन के भावों से प्रकृति का उदात्तीकरण छायावाद के प्रमुख प्रवृत्ति रही है।

छायावादी कवि प्रकृति के कुशल चितेरे रहे हैं। इन कवियों ने प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप लगाया हुआ है। पंत कहते हैं कि -

"अचिरता देख जगत की आप,

शून्य भरता समीर विश्वास,

डालता पातों पर चुपचाप,

औंस के आंसू नीला काश।"[2]

सुमित्रानंदन पंत अपनी 'मोह' नामक कविता में नारी विशेष को प्रकृति विशेष से कम आंकते हैं। प्रकृति अपने आप में सौंदर्य का खजाना होती है। प्रकृति नारी सुंदरता को बढ़ाती है , उसके प्रतीक रूप बनकर उभरती है। प्रकृति की अलौकिक छटा का चित्रण 'मोह' कविता में करते हैं। जैसे -

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,

तोड़ प्रकृति से भी माया

बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन

भूल अभी से इस जग को।" [3]

पंत जी ने प्रकृति का आलंबन रूप में भी चित्रण किया है। आलंबन रूप में चित्रण करना ही प्रकृति का यथार्थ रूप में चित्रण करना कहा जाता है। प्रकृति के यथार्थ को उन्होंने बहुत ही सुंदरता से चित्रित किया है। 'बूंद की बादल' कविता में आलंबन रूप में प्रकृति का चित्रण उमडा हुआ है। 'कामायनी' में प्रसाद जी ने हिमालय को आलंबन रूप में ही प्रस्तुत किया है। पंत ने अपनी 'पर्वत प्रदेश' में

पावस, ग्रामश्री ,आधी आदि रचनाएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय रूप में आलंबन रूप में चित्रण को प्रस्तुत करती है।

"पावस ऋतु भी पर्वत प्रदेश
पल-पल परिवर्तित प्रकृति देश
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्त्र द्रग सुमन फाड़।"[4]

जिसका अर्थ है, बरसात के रूप में हरे भरे पर्वतीय प्रदेशों पर रंग बिरंगी रंगों का दर्शन कराने वाली बादलों की हलचल, जैसे किसी नारी के कमर पर बंधा हुआ बंद, जो गोलाकार धातु से बना होता है। ठीक उसी तरह मेघ ने अपने में लाए हुए जल को सहस्त्र फूलों की वर्षा समान अपने बूंद-बूंद को जमीन पर गिरा रहा है। जो दृश्य बहुत ही सुंदर और आलंबन से पूर्ण है।

सुमित्रानंदन पंत दुख की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने के लिए भी प्रकृति का सहारा लेते हैं। प्रकृति के माध्यम से नवसंजीवनी मिलती है। प्रकृति वेदना से, थकान से, दुख-दर्द से राहत देती है। वेदना का विनाश प्रकृति में है। प्रकृति प्रेमी पंत ने सृष्टि की तुलना मनुष्य से करते हुए, उसे सौंदर्य राशि के सर्वोच्च पद पर सुभाषित किया है। क्योंकि वह मुर्दु मुखी, सुसंस्कृत, सभ्य, विकास मान, धार्मिक, वर्ण, रंग, रूप, लिंग, भेद से ऊपर उठकर प्रकृति के आधार पर सर्जन के नए सोपान की खोज करते हैं।

सुमित्रानंदन पंत ने अलंकारों के माध्यम से प्रकृति का स्वच्छंद चित्रण किया है। अलंकारों का इतना खुलकर प्रयोग ओर किसी कवि ने नहीं किया। जितना पंत जी ने किया है। छायावादी कवियों की प्रकृति के विविध उपकरणों का प्रयोग उपमान के रूप में करने की परंपरा रही है। जिससे चमत्कार उत्पन्न होता है। 'आंसू' नामक कविता में उपमानों का पर्वत ही खड़ा किया है। जैसे -

"इंदु की छवि में, तिमिर के गर्भ में, अनिल की ध्वनि में, सलील की वीचि में,
एक उत्सुकता विचारती थी,

सरल सुमन की स्मृति में, लता के अधर में, निज पलक मेरी विकलता
साथ ही अवनि से,
उर से मृगाक्षी ने उठा।"[5]

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' अपने नाम के अनुरूप कथ्य और अभिव्यक्ति पक्ष में अन्य छायावादी कवियों से निराला 'निराले' थे। वे भीषण जीवन संघर्ष के सेनानी रहे हैं। अकेलेपन में प्रकृति ही उनके जीवन का एकमात्र आधार रही। इसीलिए उनके काव्य में कोमलता का परित्याग कर विराट और विशिष्ट बन गया है। 'जूही की कली','कुकुरमुत्ता','अरुणिमा','नए पत्ते' इनके पतझड़ के बाद वाली हरियाली मयी कविता संग्रह है। निराला के लिए प्रकृति ब्रह्म है, शक्ति है, बहती निराधार पृथ्वी गगन में अतनु में सुन तू हार के द्वारा कवि ने प्रकृति को अनंत पूर्ण अनादि और निराधार घोषित किया है। एक जगह रामविलास शर्मा इनके लिए कहते हैं कि,"भारतीय दर्शन में जो पांच तत्व प्रसिद्ध है, वह शक्ति के विभिन्न रूप है। इसलिए पांच तत्व देखने में पांच होते हुए भी, वास्तव में एक ही है। जो आकाश है वही बदलकर पृथ्वी बनता है, जो पृथ्वी है वही जल बनती है, जो जल है वह हवा अथवा आकाश बन जाता है।"6 'सरोजस्मृति' यह कविता समष्टि को व्यक्त करने वाली कविता है। समष्टि का व्यष्टि के पथ पर चित्रण इस कविता में हुआ है। निराला द्वारा लिखी गई लंबी कविता और शोक गीत यह कविता है।

अपनी आठारह वर्षीय पुत्री के निधन पर 'सरोज स्मृति'कविता का निर्माण उन्होंने किया । बेटी की वेदना से आहत करने वाली यादों को कविता प्रस्तुत करती है। यह निराला का एकमात्र शोककाव्य था। जिसमें वेदना और प्रकृति का मानवीकरण बहुत ही अच्छे ढंग से किया गया है। वे कहते हैं कि -

"सोती हुई सरोज अंक पर,
शरद शिशिर दोनों बहनों के,
सुख-विलास-मद-शिथिल-अंग पर,

पद्म पत्र पंखे झलाएं थे।"[7]

निराला ने 'संध्या' शाम का नारी के मधुरमय प्रतिमानो को लेकर सुंदर चित्रण किया है। संध्या,शाम का इतना सुंदर चित्र अन्यत्र दुर्लभ ही कहा जा सकता है। वह अपनी 'संध्या- सुंदरी' नामक कविता में सूर्य के अस्त होने वाले समय का बड़ी ही रोचकता से चित्रण करते हैं। जैसे-

"दिवसावसान का समय,

मेघमय आसमान से उतर रही है,

वह संध्या सुंदरी परी सी ,

धीरे धीरे धीरे,

तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास।"[8]

छायावादी कवि में प्रकृति का सुंदरीकरण है, लेकिन उसमें रितिकालीन भोगवादी सौंदर्य नहीं है। यहां वेदना की प्रतिमूर्ति प्रकृति में देखी गई है । 'मैं नीर भरी दुख की बदली' जैसे उपमानों के आधार पर वेदना का चरम उत्कर्ष वेदना की मूर्ति महादेवी वर्मा जी को कहा गया। प्रकृति उनके लिए अज्ञात प्रियतम हैं। इसीलिए "मुस्कुराता संकेत भरा नभ" प्रियकर के आने का संदेश महादेवी वर्मा को स्मितमय कराता है। महादेवी वर्मा जी ने माया के लिए दर्पण और आत्मा के लिए दीपक जैसे प्रतीक, प्रकृति प्रेमी होने के कारण अपने प्रतीक भी प्रकृति से ही लेते हैं । रहस्यवाद के रूप में उपकरण, उपादान और व्यापार को चित्रित किया है। महादेवी वर्मा जी के काव्य में वेदना की अनुभूति विभिन्न प्रकार से हुई है। करुणा और दुख को उन्होंने अपने काव्य में रेखांकित किया है। वेदना केवल व्यक्तिगत ना होकर समष्टि मुलक है । उसे विभिन्न प्रतीकों को आधार बनाकर प्रस्तुत किया है। उसमें प्रकृति का चित्रण रहस्यमय रूप से चित्रित हुआ है। 'निहार' नामक कविता में वह लिखती है ।

"था कली के रूप से शैशव में आहो सूखे सुमन,

कह उठा अठखेलियां इतरा सदा उद्यान में,
अंत का यह दृश्य आया था कभी क्या ध्यान में,
से राह अब तू धरापर शुष्क बिखराया हुआ,
गध कोमलता नहीं मुख मंजू मुरझाया हुआ।"[9]

जयशंकर प्रसाद भी प्रकृति का मानवीकरण करते हुए प्रकृति के अद्‌भुत सौंदर्य को रेखांकित करते हैं। कामायनी जैसी महाकाय रचना की शुरुआत ही वह प्रकृति के सुंदर से चित्र से लिखते हैं। नारी सुंदरता, मन की सुंदर कल्पना, वेदना का भाव सभी को प्रतोको के माध्यम से चित्रित करते हैं। प्रकृति एक सजीव रूप में इनके कविता में जीवित होती है।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रज पग तल में,
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीवन के इस सुंदर समतल में।"[10]

जयशंकर प्रसाद अपने सभी काव्य में प्रकृति की विभिन्न छटाओं को रेखांकित करते हैं। प्रकृति के सभी अंगो का वह अति सूक्ष्म ता से चित्रण करते हैं । नारी सुंदरता को प्रकृति का अनमोल उपहार उन्होंने माना है।

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि, छायावादी काव्य प्रकृति की लिए अनमोल देन है। प्रकृति ही इनकी रचना की आधार है । प्रकृति के आधार पर ही इन्होंने प्रकृति को उपमान, उपादान तथा प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया। छायावादी कवि जिसमें पंत प्रकृति के प्रमुख चितेरे रहे हैं। जिन्होंने प्रकृति का आलंबन और उद्दीपन रूप में चित्रण करते हुए प्रकृति के आधार पर मानव को चित्रित किया है। छायावादी कवि निराला में सरोज स्मृति जैसी रचनाओं के आधार पर प्रकृति की सजीवता प्रस्तुत की है। महादेवी वर्मा प्रकृति में वेदना को समाप्त करने की जड़ी बूटी ढूंढती है। वेदना का एकमात्र आधार प्रकृति को उन्होंने माना। प्रकृति का अति सूक्ष्म

चित्रण छायावादी कवियों ने किया है। प्रकृति का मानवीकरण इनकी प्रमुख विशेषता रही है। प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन रूप का बहुत ही सुंदर चित्रण छायावादी कवि अपनी कविताओं में करते हैं। जिससे जीवन के प्रति आशावादी दृष्टि उत्पन्न होती है । सृष्टि से समष्टि का निर्माण तथा आत्मा और परमात्मा का मिलन प्रकृति के आधार पर ही संभव है। छायावादी कवियों की भाषा प्रकृति जैसे ही सुंदर और मनमोहक रही। इन कवियों ने अलंकारों को भी प्रकृति की प्रशंसा में चित्रित किया है। प्रकृति का इस सृष्टि पर जीवित रहना मानव जीवन की अस्मिता का जीवित रहना है। प्रकृति के माध्यम से स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह इन कवियों ने लिखा है। त्याग की प्रवृत्ति मानव को प्रकृति से सीखनी चाहिए यह संदेश इन कवियों ने दिया है। प्रकृति केवल देने का कार्य करती है चाहे वह जीवन हो या जीवन जीने के लिए साधन।

संदर्भ ग्रंथ :

1.हिंदी साहित्य का इतिहास -डॉ. सोनटक्के - पृ. क्र.328

2.पल्लव, परिवर्तन कविता - सुमित्रानंदन पंत

3. मोह कविता - सुमित्रानंदन पंत

4. पर्वत प्रदेश में पावस - सुमित्रानंदन पंत

5. आंसू - जयशंकर प्रसाद

6. निराला की साहित्य साधना - रामविलास शर्मा- पृ. क्र.76

7.वन कुसुमों की शैया - निराला

8. संध्या-सुंदरी - निराला

9. निहार - महादेवी वर्मा - पृ. क्र.50-51

10. कामायनी - जयशंकर प्रसाद

***

Indian English Fiction and Environmental Problems

Dr. Prasad A. Joshi
Head & Research Guide, Dept. of English, Mahatma Jyotiba Phule Mahavidyalaya, Tq. Mukhed, Dist. Nanded (MS)

Abstract:

During the most recent couple of many years, Environment has represented an extraordinary danger to human culture as well as Mother Earth. The broad abuse of regular assets has left us near the precarious edge of the trench. The rainforests are chopped down, the petroleum derivative is quickly diminishing, the pattern of the time is in a jumble, biological calamity is regular now all over the planet and our environment is at the edge. Under these conditions, there emerged another hypothesis of perusing nature composing during the last ten years of the earlier century called Ecocriticism. An overall emanant development appeared as a response to man's human-centric demeanor of ruling nature. The current paper looks to investigate the ecocritical points of view as visualized in some select world literature as well as Indian writing in English. This environmentally arranged investigation of literature achieves biological education among the perusers who in the process become cognizant, subsequently taking great consideration of Mother Earth. The environmental concern is one of the central issues of the day, Ecocriticism has gone through fast advancement during its short residency since its presentation. It is an interpretive apparatus for examining nature composing which is

ordinarily connected with Environmental criticism, Creature studies, Green Social Investigations, Ecosophy, Profound Biology, Ecofeminism, Eco-mysticism, and such.

The beginning of Indian writing in English returns to the completion of the eighteenth 100 years and the beginning of the nineteenth hundred years during when the English language either essentially undauntedly got comfortable with three huge focal points of English Colonialism explicitly Calcutta, Madras, and Bombay. In India, the move of the novel started during the nineteenth 100 years with Raja Smash Mohan Roy, the reformer who procured the rebuilding cutting-edge Indian Literature. The primary creative renaissance began in Bengal. Indian creators in English showed their adaptable responsibility right now creation. The primary Bengali novel 'Alaler Gharer Dula' (The Spoilt Child of Family) was distributed in the year 1858.

—Indian epic has grown broadly in mass, grouping, and advancement. Which began as a little plant has now achieved a rich turn of events and veered this way and that.

There is a faltering association between science and composing. From the old events to the present, various columnists at various events raised their voices about the normal world. Organic examinations present human portrayals of nature. According to human perspectives, environmental issues are stressed over science, nature, prosperity, business, benefits, administrative issues, ethics, and monetary viewpoints. There is close stress over condition, environment, and composing. The environmental examination has become as critical as science, monetary angles, regulative issues, and humanities. Environmental

Artistic Investigations cover terms like Environment, Environmentalism, Environmental examination, Green assessments, Ecofeminism, and Eco-poetics anyway it's generally famous for Ecocriticism. The degree of Environmental Abstract Investigations is complex and changes with various issues of the human and non-human world.

Environmental issues are at the point of convergence of the talk. A couple of public and all-inclusive get-togethers and studios are being coordinated to enlighten the earth-related issues. Watching the contemporary conditions clearly gives the idea that individual has made by far most of the issues intruding with the fair idea of the earth. An individual has caused a couple of coherent manifestations and used various methods in order to develop adventures. Despite the way that industrialization and urbanization are basic for the monetary achievement and improvement of a nation yet the risky effects on condition and human presence can't be excused. Environmental issues generally came into focus after the beginning of industrialization and urbanization.

The Indian way of thinking is well off in normal thought since Veda, which paid comparable importance to every single living being. India is furthermore a spot that is known for rich biodiversity. From the Himalayas in the North to Kanyakumari in the South, from the Straight of Bengal in the east to the Middle Eastern Ocean in the west, the country has versatile actual environmental elements leaving a significant impact on individuals. Composing isn't isolated from that. A good number of researchers oversee ecocritical works.

Ecocritical perspectives may be best found in the progress of Nobel Laureate Rabindranath Tagore who laid out Viswa Varati at Shantiniketan quite far from a madding swarm. His 'Rakta Karabi' and 'Muktadhara' are the best instance of ecocritical compositions where he depicts human shocks against nature. His ecocritical verses consolidate "The Manageable Bird was in an Enclosure" (The bound fowl has even neglected how to sing) and "I separated you Bloom" (The human feel that winnowing blooms by their own doing. Nature is genuinely not a peaceful spectator. One day it will answer. It wouldn't be just a thorn prick yet can be a convincing downpour. People ought to be wary of this).

Anita Desai's 'Fire on the Mountains' is a veritable instance of ecocritical content dealing with the issue of animal killing, people's impact, and moral corruption of man - all making a gamble on nature represented by a visit to fire in the forest.

Kamala Markandaya's 'Nectar in a Sifter' talks about Nature as a destroyer and preserver of life. The essayist here has shown how the debacles of industrialization ruin the sweet understanding of a laborer's life.

Arundhati Roy's 'The Lord of Little Things' is a portrayal of the double-dealing of nature, by individuals for progress and modernization which is a predominant subject of the book. The maker here has given her sharp experience with the current pressing normal issues. The essayist raised her voice for the earth, which is by and by under an unbelievable gamble of tainting. At this moment,

uncovered the huge degradation of nature as well as thought about the clarification for its dehumanization.

Ruskin Bond's 'No Space for a Panther' shows the pitiable condition of the animals after deforestation. 'The Tree Darling', 'The Cherry Tree', 'All Animals Extraordinary and Little' and various others are about the chain which ties man and nature, as in the chain of the organic framework, showing dependence.

Kiran Desai in her 'Hubbub in the Guava Plantation' is wary about the wild town life, having frustration when the legend takes shelter in the Guava Plantation. In her 'The Legacy of Misfortune', the author shows how Kanchenjunga pays for the seriousness of human aggression. Ecocriticism here gets a political estimation in the novel when an un-assessed setback happened due to the Nepali revolt making a lot of damage to human existence, animals, and the peaceful greatness of nature.

Amitav Ghosh's 'The Eager Tide' is an extraordinary ecocritical message as the original highlights the biologically and socially unforgiving structure held onto by individuals. The delta of the Sundarbans has been shown as the destroyer and preserver of life. The story constantly depicts the state-upheld mental persecution to oust the seized Bengali Evacuees settled at Marichjhapi.
Ecocriticism as an educational control arose genuinely late in India. The Indian ecocritics committing to ecocriticism in India are according to the accompanying

In her 'Taken Gather', a fair instance of ecocritical content, Handkerchief Shiva (an Indian natural radical turned ecocritic) condemns the bio-robbery of the west for licenses from unfortunate countries. As such, she shows

that colonization doesn't include the past; it is still especially alive. According to her, advanced farming has not conveyed greater sustenance; it has destroyed the various wellsprings of sustenance. Along these lines, she gave a neocolonial estimation of ecocriticism. Among her famous obligation to the field of ecocriticism, notice may be made of The upcoming Biodiversity, Soil Not Oil, Remaining Alive, Ecofeminism, Viciousness of the Green Upset, Water Wars, Biopiracy, Reconciling with the Earth, and such.

Nirmaldasan (an Associate Teacher of SRM School of News-casting, Tamil Nadu) close by Nirmal Selvamony, (a Peruser in English, Madras Christian School, Chennai) has earnestly committed to 'Oikopoetics' which suggests the poetics of the 'Oikos' or domain containing the spirits, individuals, nature, and culture-well defined for it. His most memorable volume of verse named 'An Eaglet in the Skies' is the enjoyment of creation, a pleasure great deal of similar to an eaglet that has sorted out some way to fly.

Ecocriticism in India is by and by in its resulting stage, which causes the blend of the essential wave and the ensuing wave as proposed by Lawrence Buell. While the central time of Ecocriticism progressed commonplace understanding of science, the resulting stage eyewitnesses Ecocriticism as a figured-out improvement moving towards an overall concern.

Nature: The Ecocritics use the term 'nature' in a greater sense. Ecocriticism isn't just the examination of nature as spoken and recorded as a hard copy. Nature here doesn't mean an irrelevant extreme of its superb points like plants and animals. Nature here strategies the whole state of being

including the human and the non-human. The interconnection between the two makes a bond which is the reason for Ecocriticism. For whatever period of time that there is a concordance between the living and the non-living, there wins a sound eco-system for the compassion of mankind similar to the earth. "The state-of-the-art natural mindfulness has a tendency that the concordance among people and the normal world should be kept up. Ideal nature is one in which plants, animals, padded animals, and people live in such concordance that none overpowers or wrecks the other".

Anthropocene versus Biosense: Human sense is essentially human-driven which positions individuals on top. As the world's simply creative being, man sees himself as better than one other living thing. In any case, ecocriticism decenters humanity's importance to each dissent of condition. In science, man's miserable flaw is his human-driven rather than biocentric vision, and his motivation to survive, fit, train, misuse, and experience every trademark thing. Human-driven acknowledges the incomparability of individuals, who either sentimentalize or overpower the earth. Of course, Biocentric decenters humanities and altogether explores the complicated interrelationships between the human and the nonhuman.

Nature versus Culture: One of the comprehended goals of ecocritics is to reexamine the association between culture and nature. The present environmental crisis is a bi-consequence of human culture. Since his starting point, man started living in proximity to nature in the ordinary environment. Culture is connected with the geography of a scene. For example, Synge's Aran Island, Solid's Wessex,

R.K. Narayan's Malgudi, etc significantly affect the characters of their works. Culture is something that has been made all through the years by people who have been living in a space for quite a while. To the extent that man lived in a cozy relationship with nature, there will be no environmental gamble. Be

References:

1. Bond, Ruskin (2008). "A Bush at Hand is Good for Many a Bird". The Book of Nature, New Delhi Penguin -India Ltd.2008. Print
2. "A Crow for All Seasons". Collected Fiction. New Delhi: Penguin -India Ltd.1999. Print.
3. "A Crow in the House". Children Omnibus. New Delhi: Rupa& Co.2007.Print.
4. "A Long Walk for Beena". Himalayan Tales, New Delhi: Rupa & Co.2005.Print
5. "A New Flower". Nature Omnibus, Delhi: Ratna Sagar P. Ltd.2007.Print.
6. "A Tiger in the House". Collected Fiction. New Delhi: Penguin -India Ltd.1999.Print.
7. "A Village in the Mountain". The Book of Nature, New Delhi: Penguin -India Ltd. 2008.Print.
8. "A Walk through Garhwal". Himalayan Tales, New Delhi: Rupa & Co.2005.Print.
9. "A Week in the Jungle". Children Omnibus. New Delhi: Rupa & Co.2007.Print.
10. "All Creatures Great and Small". Collected Fiction. New Delhi: Penguin -India Ltd. 1999.Print.
11. "An Island of Trees". Nature Omnibus. Delhi: Ratna Sagar P. Ltd.2007.Print.
12. "Angry River". Children Omnibus. New Delhi Rupa & Co.2007.Print

***

Reflection of Environment in the Study of English Literature

Research Supervisor
Dr. Hatode Kirtiratna B.
Dept.of English, Mahatma Jyotiba Phule College, Mukhed, Dist. Nanded

Abstract:

Every literature depicts physical environment and human environment relationships.In modern context, the interdisciplinary study between environment and literature is known as Ecocriticism.Ecocriticism includes contributions from natural scientists, authors, literary critics, anthropologists and historians in investigating the differences between nature and its cultural construction.So many authors in English literature have surprisingly depicted the inter relation between literature and nature.Any literature is truly incomplete without the portrayal of its surrounding environment or nature.As of now, the concepts like ecocriticism, ecology and environmentalism seem to be closely relevant and interrelated.Nowadays environment and as a result nature seems to be in real peril which almost all literatures portray through works and globalization has been the perilous force in natural and environmental destruction,

Keywords: literature, environment, ecocriticism, globalization.Ecology…

While representing the nature and environment, literature plays a vital role.Because literature always reflects the living as well as non-living beings.It means literature incorporates the society and its surroundings in

the sense environment,Eco criticism is the concept which implies the association between literature and the environment.Ecocriticism as a movement actually began in the 1960s with the publication of Rachel Carson's *Silent Spring* in 1962 but it really started to take off in the 1980s.As of now there have been two phases of ecocriticism,the first in the 1980s and the second in the 1990s.

The first phase insisted upon the writings about nature as a field of study and as a meaningful practice.It pointed out the difference between human and nature but it also motivated the value of nature and the need to speak out and stand up for nature.People believed that it was the duty of the humanities and the natural sciences together to raise awareness and come up with the solutions for the environmental and climate crisis.T

The second phase extended upon the first one and expanded the reaches of environmentalism.Eco-critics of this phase redefined the concept of environment and incorporated both nature and urban areas and challenged the distinctions between human and non-human and nature and non-nature.Eco-critics study the interrelation between nature and human beings in literature.Almost every genre in English literature has made use of environment in literature.The authors like Ruskin bond, Robert Frost, Anita Desai,Amitav Ghosh and several others have wonderfully demonstrated the relationship between literature and environment.

As far as Indian English literature is concerned, there are a number of literary texts which portrayed the motif of ecology in them and discussed environmental

concerns.The writers like Anita Desai,Amitav Ghosh and in line with them several other writers have tried to understand ecocriticism minutely. Kamala Markandaya is no exception to this, since her novel *Nectar in a Sieve*(1954) describes the efforts by the female protagonist Rukmani to recover and restore elements of the local culture of her family and a deep sense of rootedness in their territory.

In Anita Desai's*Cry the Peacock*(1963), the relation between nature and man is very significant.In this work, the female psychology is expounded by the author. Maya, the female protagonist of the novel made use of so many photographs of botanical, zoological, meteorological and colour representing acts.The novel,*The Hungry Tide*(2005) by Amitav Ghosh actively addresses the concerns of environment.The novel expounds the relationships between the plants and animals and the surrounding environment.It was set in the Sundarbans, an island that was astonishing and interesting in the Bay of Bengal.The novel illustrated the disaster as well as the irony embedded in the Sundarbans conservation efforts.

An interesting and considerable aspect of ecocriticism is that besides literature, many other fields of scientific enquiry such as botany, genetics,ornithology, conservation biology have also addressed the concerns of ecology.Even in films, the environmentalism has found rich expressions in both verbal and visual means.

Annie Dillard's Pulitzer Prize winning *Pilgrim at Tinker Creek*(1974) intermingled the detailed investigations of the natural world with author's reflections on the human meanings of life and death. German novelist, Christa Wolf

in *Accident:ADay's News*(1987) has expressed the reflection of nature with human beings.

One of the subtle goals of the eco-critics is to rethink the relationships between nature and culture.The existing ecological peril is a bio-product of human culture. R. K. Narayan's *Malgudi*, Thomas Hardy's*Wessex,*Synge's Aran *Island* have their effective marks on the characters of their writings.

Robert Frost, one of the most distinguished American poets, has deployed woods, lakes, stars etc in his poetry.His poems are simple on surface level but if we probe deeper, they also display that the nature reveals the universal truth of life. Jonathan Bate in *The Song of the Earth* argues that colonialism and deforestation have frequently gone together. Raymond William's*Country and the City* and Lawrence Coupe's*The Green Studies Readers* are critical texts which address the inter-relation between human and ecology.

Anita Desai's*Fire on the Mountains* is also a good example of ecocritical text which addresses the issues of animal killing, population explosion, moral degradation.It propounds man to be all causing threat to the ecology.

As a matter of fact, ecocriticism as an academic discipline arose rather late in India, yet Indian eco-critics have made a considerable contribution to ecocriticism.Bandana Shiva, an Indian environmental activist turned eco-critic, has expressed the ecological concerns in her *Stolen Harvest.*She has contributed to the field of eco criticism notably.Her works like *Tomorrow's biodiversity, Soil not oil,staying alive, Ecofeminism, Violence of the green revolution,Water wars* are some of

the best ecocritical articles which address a deep sense of ecological concerns.

In order to meet with the present environmental crisis, eco-critics play a very vital role in constructing the eco-consciousness among the readers which is extremely essential for the preservation of environment.

Conclusion:

Literature indeed describes natural environment and human beings in association with each other.Several authors have written regarding the inter-relationship between environment and society. The reason behind these writings is that a message should be delivered to the minds and souls of every individual for the preservation of environment.Because globalization is posing a very perilous picture to the environment.Even deforestation also seems to happen on a larger scale, so it is the duty and responsibility of every individual to preserve the environment.Academics and educated people must ponder over these issues seriously.Literature claims to be a vital role in disseminating the awareness regarding the conservation and preservation of nature and environment

References:

1. Desai Anita,Cry, The peacock,Peter Owen, London; 1963,

2. Ghosh Amitav, The Hungry Tide,Harper Collins, London, 2005.

3. KamalaMarkandaya, The Nectar in the Sieve, Penguin books, New Delhi,1954.

4. LawrenceBuell, New England Literary Culture: From revolution through renaissance, Cambridge university press, 1986, pg.292.

***

“English Literature and Environment”

Prof. Shubhangi B. Barhate
Sitabai Arts, Commerce and Science College, Akola

Abstract:

Literature is a device to assist us to explore our thoughts, expressions, ideas behaviors and especially to find out for our selves what approaches to being human. Literature represents a resouriding frame to work that tells to people of all ages about ideas that might he of significance to inform the condition of being human. Reading a literature is an enriching, enjoyable, eyeopening and learning process literature is an interesting subject matter and it has an enormous relevance in this twenty-first century literature is a timeless piece of enjoyment. If displays or shows human nature and surroundings. Especially in literature writer. Writer what he feels, it can be emotional happy, romantic and so on writer emotions comes on the paper in the shape of words in English literature we can see that environment is a link between literature and writer without environment, nature there is no existent of literature, not only in English butinan other language also. In English literature there is a one word, unchangeable place for environment nature is one of the most powerful and mysterious forces of the universe that influences man greatly. Philosophically considered the universe is composed of nature & soul. It controls all the living non living, organic- in organic, visible, invisible, human, non human things. To the man nature is the pure, real and original source of happiness, he forgot his all

depressing sorrowful conditions in the mesmerizing company of nature. Man is influenced by both nature and culture. The delightful company of nature develops man's sense of beauty. Nature feels mans heart with pleasure but that man should have perspective of depth of the natural beauty. Nature teaches a man to stand always like mountain and motivates like a spring flowers blooms. Nature has everything in a huge quantity only we have to realize that. In the world literature nature plays a main role to set the mood of thetext. The creativ earti stuses nature to reveal both comic and tragica spect of life. nature helps to expose writers inner and abstract feeling. It gives meaning to the writer words and a greatar tistreachatthat point where reader goes through that's it uation which artistcreates.

Key Words : Literature, nature, works, environment, natural, theme, human being, behavior, power, poet, writer, poems.

Introduction:

English literature and Nature or environment has a great relation from the beginning. Literature display shumannatureinamanner we cans tudy and then relate to others. Literature opens our eyes and makes us to see something greater than what is immediately shows us. It helps enlarge our minds. The energy of literature has many factors including actual fabric, a language in use and an aesthetic illustration of the spoken language as well as enrichment of translation and lifestyle literature has a unique feature in shaping and coaching our environment at large. It includes every thing of this universe. There was a connection between nature and literature. This relationship has been contemplated via writer and poets from

exceptional cultures of the circle. Some of the poems, novels and different expressions of literature had been finishedinsidethecontextofnatureassociatedtroubles.It is anexiting assessment for a literarycriticwho researches the texts of writer who have noted the close association between man and nature.

Relation Between Literature& Environment :

In plenty of English literary works, nature has been one of the most essential figures the transformation inside the social and cultural environments of the filed has modified the representation of man's perspective toward nature 'ecocriticism' is an unexpectedly increasing area of study that cover an large-scale variety of text and theories which serve the relationship between man and nature. There are numerous strategies that authors have to explore environmental problems.

Ecoeritieism is the study of literature and environment form aninter disciplinary point of view where literature scholars analysis environment and brain storm possible solution.

The issue of the matter of ecocritieism may be interpreted through to the analysis of Indian novels specifically, 'Nectar in a sieve' by Kamala Markandaya 'Cry', 'The peacock' by Anita Desai. 'The Hangry Tide' by Amitav Ghosh. Nature imageries utilized by many writers to specify the desires, feelings of their characters. To the deal with environmental disaster, ecocriticplay aimportant role in constructing ecological awareness among readers. Ecocriticism gets ideas from the American writer whose works regards nature as existence stress and the barren place as manifested in us and they are Ralph Waldo

Emerson (1803-1850) and Henry David Thoreau (1817-1862). The writer belonged to the organization of recent English writer, essayist, poet, novelists and philosophers together known as Transc end entalists.

Indian philosophy is rich in ecological wondering due to Veda, which paid identical importance to all India is also a land of wealthy biodiversity. From the Himalayas of the north to Kanyakumariof the south, from the bayof Bengal to the Arabian Sea at the west, using versatile surrounding leaves a deep impacts on people. Ecocritical perspectives may be bestperceivedin the writing of Nobel Laureate 'Rabindranath Tagore Founded' 'Varati' at Shantiniketan. His 'Rakta Karabi' and 'Muktadhara' are the qualityexamples of ecocritical text. Kamala Markandeya's Nectar is a stainer represent 'Nature' as a destroyer and preserver of existence. The novelist has proven that, how the evil of industrialization destroy the sweet harmony of a enjoy able life style.

Arandhati Roy's 'The God of Small Things' is a portrayal of the exploitation of nature, Kiran Desai in her 'Hullaballo' in the guava orchard is critical of tense metropolis life. Amitav Ghosh's 'The Hungry Tide' is a powerfulecocriticaltextastheradicalideas. The environment is an inseparable part of the human lifestyle, is paramount in all principal official writings. An ecological insight might also cause them to have several views. Indian philosophy and writing is not an exception for this Sarojini's Poems are full of natural things, Indian birds appeared in her poems. In Tora Dutt's poem 'Casuarinas Tree' a deep description of a (Python) big tree. In 'Lotus' so many flowers are there in the poem and their flowers

conversation potrayed fantastically. In Rabindranath Tagore's poem's has a natural touch and his Gitanjali considereda 'Garlandof 103 Song.'

Without nature there is no literature, this we can see in the poems of Coleridge, Wordswarth and Southey. These three a natural name that is 'Lake Poets' with the realization of feelings, emotions and expressions with a touch of heart they have written poems in woods. The best English poems about nature.

The poem of Robert Frost 'Stopping by the Wood's' describes a perfect beauty of snowy woods Attraction of stopping there, described very truly, that we can see the scenario of that woods, great imagery of Robert Frost. 'Stopping by Woods on a Snowy Evening' is a poem by Robert Frost, written in 1992 and published in 1923 in his 'New Hampshire Volume.' Imagery, person ification and repetition are prominent in the work.

Henry Howard, earl of Surrey, 'The Soote Season.' This is one of the first sonnets written in English but it's not as well known as it perhaps should be. It's about the coming of summer and the various ways in which a world previously in a sort of status or liberation is now springing into life soot means weet. However despite this the poets sorrow also springs in to new life at this time. An early example of the nature poem in English literature. In linesofpoemreflectstheincrediblereflectionofnature.

"Theso othe season that bud and blame Furth brings with
green that cald the hill and eke the vale.
The Night ingalewithfetchernewshesinges:
Theturtletohermakethattoldhertale:"

Charlotte Smith's 'Beachy head'. This song or Long poem by one of the overlooked pioneers of English romanticisms as well as a poet who led the revival of the sonnet form in English. This poem demonstrates Smith's talent for writing about nature, with the description of 'The toys of Nature' Such as, the gay harmony of herds, winds that wander in the leafy woods. It begins withthewords.

"Onthystupendous summitrocksuhlimol
ThatO'erthechannelrearhalfwayatsea.
Themarineratearlymorninghails."
Iwouldrecline,whilefancyshouldgoForth.

William Wordsworth's So many poem's are there which are looks natural poems examples of nature given there in so many poems his poems are 'The society solitary Reaper', 'Daffodils' I wandered lonely as a cloud, 'Lines written in early spring. By William Wordsworth is a beautiful landscape poem than is largely concerned with nature. A beautiful poem that explores the power of nature, particularly spring. It is highly representations of Wordsworth.'

"Iheardathousandblendednotes,
whileinagroveIsatereclined,
Inthatsweetmoodwhenpleasantthoughts
Bringsadthoughtstothemind."

'It war an April Morning', 'To a Butterfly' 'To The Skylark', 'Ode: Intimations of Immortality' referred to as Wordsworth's greatest ode, the there is a endless listofnaturepoetsandwriter.Wehavetotakepausehere.

Conclusion:

Like above description, we can interpret that, there is no literature without nature. Because in this universe, a

creator of literary works, portray ideas which he can see around him. Environment is a inseparable part of our life.

Reference Resources:

1. Literatureandenvironment– LawrenceBuell(HarvordUniversity)

Web: Resources:

1. www.asle.org
2. wwwenvironmentalhistory.org.

***

A Study of Inter-relationship betweenEnglish Literature and Environment

Research Supervisor
Prof. Hatode Rashtrapal Bapurao
MA Eng, SET, M.Phil., Ph.D.SRTMU Nanded.

Abstract:

Literature and environmental studies togetherisknown as 'Ecocriticism'. The definition byCheryl Glotfelty in, *The Ecocriticism Reader* is that "ecocriticism is the study of the relationship between literature and the physical environment". Lawrence Buell defined "ecocriticism asthe study of the relationship between literature and the environment conducted in a spirit of commitment to environmentalist praxis".This modern movement has emerged first in the late-nineteenth century and, in its more recent incarnation, in the 1960s,It gave rise to a rich array of fictional and nonfictional writings concerned with humans' changing relationship to the natural world.Always literature and the arts have been drawn to portrayals of physical environments and our human-environment interactions.In the modern age 1990s, Environmental studybecame the long-standing interest of literature studies in these matters generated the initiative most commonly known as "ecocriticism."The relationship between literature and the environment is symbiotic.However,Ecocritics turn away from social constructivism, but it would look like that nature is a social construct. It is a symbol that is given power and meaning by those who create it.

Keywords: ecocriticism, literature, environment, constructivism…

Ecocriticism means the study of the relationship between literature and environment. Lawrence Buell defines "'ecocriticism'as a study of the relationship between literature and the environment conducted in a spirit of commitment to environmentalist praxis".This termis used to denote a critical approach which started in the USA in the late 1980s, and the term came in the UK in the early 1990s. In the USA,the acknowledgement founder is CherylGlotfelty, co-editor with Harold Fromm of a key collection of helpful and definitive essay entitled *"The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology"*. In 1992, she was also the co-founder of ASLE (Association for the Study of Literature and Environment). ASLE has its own 'house journal' calledISLE (Interdisciplinary Studies in Literature and Environment), which began in 1993 that's why American ecocriticism was already a burgeoning academic movement by the early 1990s, beginning to establish its professional infrastructure of designated journals and an official corporate body.

Ecocritics turn away from social constructivism, but the term ecocriticism would seem that nature is a social construct. This is a symbol that is given power and meaning by those who create it, literature is also a man-made concept. According to the poet Leslie Marmon Silko's "Where Mountain Lion Lay Down with Deer" and Ted Hughes' "Hawk Roosting" through an ecocriticism viewpoint, and try to answer the question, is there any true environment left?The well-knownauthor of the 19th(nineteenthcentury) children's hymn C. F. Alexander

said that 'All things bright and beautiful'. This isobvious here that social inequality in being naturalized that is literally disguised as nature and views as a situation which is God given and inescapable when it is actually the product of a specific politics and power structure. The leftlong standing assumption is that any invocation of nature will have the side effect disguise the politics and so legitimating inequalities and injustices. Hence for Liu 'There is no nature…' it means in other words nature is nothing more than anthropomorphic construct created by Wordsworth and the rest of their own purposes. Gifford responded that while Lieuwas right to identify the word nature as a meditation, he was wrong to deny the general physical presence that is one side of that meditation. Indeed, the meaning of the word naturewasa key site of struggle for nearly all theoriesand it was the word with one of the longest entries of the Reymond William's influential book *Keywords*, which was a glossary of key terms and concepts from cultural theory and history.

The wave of ecocriticism emerged in the early 2000s through a more complex understanding of the overall history of global environmentalism and environmental justices. According to the writer Lawrence Buell, former Harvard professor and proponent of ecocriticism, the wave of ecocriticism aligns with public health environmentalism, with ethics and politics that are socio-centric rather than eco-centric. The wave of ecocriticism not only considers rural landscapes or wilderness, but also landscapes of urban and industrial transformations too. This is really inspired by writers such as Charles Dickens who wrote in his novels on the Victorian-era public health concerns, and the American novelist Upton Sinclair, as well as by global activists such as Ken Saro-Wiwa, who was executed for his protests

against ecological devastation in Nigeria. Whereas Michiko Ishimura who wrote about Minamata disease and the effects of mercury poisoning. The second wave of ecocriticism distinguishes itself from the first wave by prioritizing the exploration of issues such as environmental resource distribution, environmental justice, minority and socioeconomic impacts related to the environmental circumstances. A representative of second-wave ecocriticism is the 2002 Environmental Justice Reader: Politics, Poetics, and Pedagogy.

Conclusion:

We can point out that we have to pay attention to the representation of the natural world, to understand ecocentric concepts such as growth and energy, balance and imbalance, symbiosis and mutuality, sustainable and unsustainable uses of energy and resources etc. This is the environmental method that consider the cycle of growth and maturity.

Reference:

1) Burry, Peter. *Beginning Theory.*Viva Books Pvt Ltd. 2009
2) M.H. Abrams. *A Glossary of Literary Terms.*Cengage pvt. 2012
3) Albert. *History of English Literature.* Oxford pub. 2007
4) Seldon. Broker. *A Readers Guide to Literary Theory.* Pearson Pub.2007
5) Harry Blamires. *A History of Literary Criticism.* Macmillan pub. 1991
6) Raghukul, Tilak.*History and Principals of Literary Criticism.*Ramabrothers pub. 2006

Internet source:

1) www.google.com
2) www.wikipaedia.com
3) www.encyclopaedia.com

जल संरक्षणम् अनिवार्यम्।

डॉ. गणंजय यज्ञेश्वरराव कहाळेकर
संस्कृत विभाग प्रमुख व संशोधक मार्गदर्शन, महात्मा ज्योतिबा फुले महाविद्यालय,मुखेड

संस्कृत भाषा हीअभिजात भाषाआहे.वैदिक काळापासून अर्वाचीन संस्कृत साहित्यापर्यंत शास्त्रांचा वैज्ञानिक दृष्टिकोनातून अभ्यास केलेला आहे. वेद, नाटक, महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्यादी रचनांमध्ये कवींनी सामाजिक,व्यावहारिक, प्रबोधनात्मक इत्यादी विविध विषयांवर चिंतनात्मक विचार मांडले तसेचपर्यावरणातील नदी, पर्वत, वृक्ष आदी घटकांचेही वर्णन केलेले दिसून येते. वैदिक साहित्यातील काही निवडक उद्धरणांधारे जलाचे महत्वविशद करूनजलप्रदूषणाची कारणे,दुष्परिणाम व उपाययोजना या शोधपत्रिकेत विशद करण्याचा प्रयत्न करण्यात येत आहे.

पर्यावरण हा शब्द 'वृञ्' धातूला 'परी' आणि 'आ' उपसर्ग लावून 'ल्यूट'च्या योगाने(परि+आ+वृ+ल्युट्)तयार झालेला आहे. "परितः आवृणोतित पर्यावरणम् ।" जे पदार्थ (घटक)मानवी जीवनावर परिणाम करतात (चारही बाजूने वेढलेले आवरण)आणि मानवी जीवनावर प्रत्यक्ष आणि अप्रत्यक्ष परिणाम करतात तेच वातावरण.पाणी, हवा, माती, वनस्पती,विविध प्राणी आणि स्वतः मानव देखील पर्यावरणाचा एक भाग आहेत.

वैदिक संस्कृतात अनेक भौगोलिक घटकांचे वर्णन केलेले आहे.अथर्ववेदात भूमातेस केलेली प्रार्थना ---

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ।।[१]

अथांग समुद्र आणि नद्यांच्या पाण्याने भरलेल्या, सुपीक क्षेत्र आणि अन्न मिळवून देणाऱ्या, पृथ्वी मातेने सर्व जीवांना जीवन प्राप्त

करून अमृत प्रदान करावे. भूमातेस वंदन करून वेदात वर्णिलेल्या निवडक श्लोकांनाधारे जल महत्व पाहू. _

शं ते आपो हैमवती शमु ते सन्तूत्सया:[1]
शं ते सनिष्यदा आपः शयु ते सन्तु वर्ष्याः ।।[२]

माणसाने नदी, सरोवरे, झरे, विहिरी यासारखे जलस्त्रोत शुद्ध राखले पाहिजेत तसेच खाणे-पिणे, शेती, शिल्प इत्यादीसाठी ते उपयुक्त व्हावे असे ठेवले पाहिजे. जर पाण्याचे स्त्रोत शुद्ध असतील तरच नियमित पर्जन्यही होईल. शुद्ध पावसाने सृष्टी आनंदाने डोलू लागेल.

शं ते आपो धन्वया शंते सन्त्वनृष्याः ।
शं ते खनि त्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृता ।।[३]

इथे सुखदायक या शब्दाचे दोन अर्थ आहेत एक म्हणजे शुद्ध, पवित्र व दुसरा म्हणजे सुख प्रदान करणारे हा होय. जेंव्हा पाणी शुद्ध व पवित्र असेल तेंव्हाच ते सुख प्रदान करू शकेल आणि आरोग्यपूर्णही ठरेल. म्हणून मानवाने पाण्याला शुद्ध, निर्जंतुक ठेवले पाहिजे, त्यात दूपित, घाण इ. पदार्थ मिसळू न दिले पाहिजेत.

यो वः शिवतमो रसस्तस्यभाजयतेह: नः ।उशतीरिव मातरः ।।[४]

ज्याप्रमाणे आई प्रेमपूर्ण वर्तनाने सर्व मुलांना सुख देतेवजसे पाणी हाया जगातील उपकारी पदार्थ आहे तसेच सर्व मानवांनी परस्परावर उपकार करूनआनंद भोगण्याचा लाभ घेतला पाहिजे. येथेपाण्याला मातेची उपमा दिली गेली आहे.

आपः प्रणीत भेषजं वरूथं तन्वेSSS मम । ज्योक् च सूर्य दृशे ।।[५]

जलीय प्राणी आम्हाला अनेक वर्षे सूर्यदर्शन व्हावे (म्हणजेच दीर्घायुषी व्हावे) म्हणून व शरीराच्या सर्व शक्तीसाठी श्रेष्ठ औषधी प्रदान करतात.

आपो अद्यान्व चारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्र आ गहि तं मा सृज वर्चसा ।।[६]

सूक्ष्म जल परमाणूंपासून वनलेले शरीर पुढच्या जन्मी सुद्धा शुभ कर्मानी युक्त शरीरास प्राप्त होऊ दे. अशाप्रकारे जन्मानुजन्म पाण्याचा आत्मिक व भौतिक शरीराशी संबंध जोडण्याची संलग्न ठेवण्याची प्रार्थना ऋचांमध्ये केली गेली आहे.

पाण्याच्या स्रोतांचे प्रदूषण म्हणजेच जलप्रदूषण होय. ही एक मानव निर्मित समस्या असून हवा, पाणी, अन्न या माणसाच्या तीन गरजांपैकी एक गरज आहे. मात्र येथे प्रदूषणाची कारणे लक्षात घेऊ.

नैसर्गिक पाण्यात एखादा बाह्य पदार्थ अथवा उष्णता यांची भर पडल्यास तसेच तलाव, नद्या आणि महासागरांमध्ये अनपेक्षित वस्तूंच्या संयोगामुळे पाणी प्रदूषित होत आहे.

कारखान्यांमधून सोडल्या जाणाऱ्या प्रदूषकांमुळे दररोज प्रदूषित होतात. त्यामुळे नदीचे पाणी वापरासाठी अयोग्य होते.

मानवाची दैनंदिन दिनचर्या - दररोज आंघोळ करणे, कपडे धुणे, स्वयंपाक करणे आदी कार्यास पाण्याचा अधिक प्रमाणात वापर केला जातो आणि पाणी प्रदूषित होते. या प्रदूषित पाण्याची योग्य पद्धतीने विल्हेवाट लावली जात नसेल तर जलस्त्रोतामध्ये मिसळून ते प्रदूषित होते.

औद्योगिक कचरा वापरानंतर, औद्योगिक आस्थापनांमध्ये वापरल्या जाणाऱ्या पाण्यात क्षार, क्षार, आम्ल आणि विविध वायू असतात. तसेच त्याचे मिश्रित औद्योगिक सांडपाणी जलाशय, नद्या, तलाव आणि तलावांमध्ये सोडले जाते. कीटकनाशकाच्या अधिक वापर या प्रक्रियेमुळे हे पाणी प्रदूषित हो.ते.[७]

प्रदूषणाचे दुष्परिणाम:-

पोटाचे विकार, प्रदूषणामुळे पाणीदुर्गंधीयुक्त होते, हानिकारक विषारी रसायने, ऍसिडस्, तेल इत्यादी पाण्यात विरघळल्यास विश्वाला भेडसावणारी पर्यावरणीय समस्या गंभीर रूपधारण करते,प्रदूषित पाण्यामुळे आणि तांबे, कॅडमियम आणि कोबाल्ट क्षारांनी दूषित पाण्याचा वापर केल्यास पोटाचे विकार,कर्करोग, हृदयविकार आणि इतर व्याधीही होतात.

उपाययोजना**:-**

१९७४ मधील Water Act या कायद्याची अमंलबजावणी होणे आवश्यक आहे.[८]कडक कायदे तयार करावे लागतील. पाण्याच्या शुद्धीकरणासाठी क्लोरीनचा वापर सर्वाधिक केला जातो. पण त्यामुळे पाण्यातील सर्व प्रकारचे जंतू मरत नाहीत. त्यामुळे पाणी शुद्धीकरणासाठी शुद्धीकरणाच्या तंत्रज्ञाचा वापर करून संशोधकांनी नवीन पद्धतीं शोधाव्यात असे वाटते .

जगण्याचा अधिक शाश्वत मार्ग शोधण्यासाठी . काही नैसर्गिक परिस्थितीत जीवांद्वारे प्रदर्शित केलेले वर्तन समजून घेणे. विविध पर्यावरणीय समस्या आणि समस्यांबद्दल लोकांना शिक्षित करणे आणि जागरूक करणे. प्रत्यक्षात पर्यावरणाला कोणतीही हानी न पोहंचता नैसर्गिक संसाधनांचा प्रभावीपणे वापर करणे.

सांप्रतकाळी जलप्रदूषण होऊ नये म्हणून विहिरी, तलाव आणि सार्वजनिक नळ योजनेजवळ कचरा टाकू नये, पाण्याच्या पाईपजवळ भांड्यांना कल्हई करू नये, निर्माल्य-पवित्र-मूर्तीप्लास्टिक कचरा नदी, तलाव वा धरणात टाकू नये. जल प्रदूषण संबंधित सर्व कायदे माहित करून घेऊन त्याचे पालन करावे तसेच जलप्रदूषण नियंत्रणासाठी प्रशासनाच्या विशेष विभागामार्फत जनजागृती कार्यक्रम आयोजित करावेतअसे म्हणावे वाटते.

संदर्भ ग्रंथ सूची **:-**

१.अथर्ववेद, १२।१।३.

२.अथर्ववेद, १९।२।१

३.अथर्ववेद, १९।२।२

४. अथर्ववेद, १।५।२

५. ऋग्वेद, १०।९।७

६. ऋग्वेद१०।९।९

७ .https://www.hindivyakran.com/2022/08/sanskrit-essay-on-water-pollution.html

८..https://www.mpcb.gov.in/node/2008

***

संस्कृत – वैदिक साहित्यातील पंचतत्व आणि पर्यावरण

डॉ. मनिषा विजयकुमार तांदळे

यशवंत महाविद्यालय, नांदेड.

आज पर्यावरण हा विषय अत्यंत महत्त्वाचा झाला आहे. मागच्या २/३ वर्षापासून आपण पाहतो की कोरोणा किंवा कोविड - १९ केवळ भारत देशातच नव्हेतर संपूर्ण विश्वात या महामारीने हा हाकार माजविला आहे. या संसर्गजन्य महामारीच्या अनेक कारणांपैकी एक कारण म्हणजे पर्यावरणातील प्रदूषण आहे. हे प्रदूषण मागच्या अनेक वर्षा पासून पर्यावरणात वाढू लागले आहे. या प्रदूषणाचे दुष्परिणामच आज आपणास पहावयास मिळत आहेत.

भारतीयांकडे ऋषीमुनीकृत अनेक साहित्य आहे. या साहित्यांपैकी एक साहित्य म्हणजे संस्कृत साहित्य होय. संस्कृत साहित्याबद्दल सांगायचे म्हणजे संस्कृत ही अत्यंत प्राचीन भाषा आहे. या भाषेतच ऋग्वेद इत्यादी प्राचीन ग्रंथ आहेत.

संस्कृत साहित्याचे दोन प्रकार पडतात. १. वैदिक संस्कृत २. लौकिक संस्कृत. या दोन विभागांपैकी वैदिक संस्कृतातील पर्यावरण या विषयी आपण माहीती जाणून घेणार आहेत.

वैदिक दृष्टिकोणातून पर्यावरणाचा जर विचार केला तर सृष्टीच्या उत्पत्तीमध्ये पंचमहाभूतांचे मोठे योगदान आहे. पंचमहाभूतां शिवाय सृष्टीची निर्मीतीच अशक्य आहे असे म्हणल्यास

वावगे ठरणार नाही. जल, वायु, आकाश आदी पंचमहाभूते मनुष्य, मनुष्येतर प्राणी, वृक्ष, सूक्ष्मजीव इत्यादी अनेक घटक पर्यावरणाशी निगडित आहेत. वास्तविक वैदिक साहित्यात 'पर्यावरण' असा शब्द योजला नाही. परंतु पर्यावरणाशी निगडीत जे घटक आहेत त्यांचे संरक्षण आणि संवर्धन सूक्तींच्या माध्यमातून केले आहे.

"इमानि पंचमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाशआपो ज्योतीषी - (सुबोध उपनिषत्संग्रह , भाग पहिला , पृ. क्र. २७९)

अर्थात पृथ्वी, आकाश, वायु, जल आणि अग्नि ही पंचमहाभूते आहेत. या पाच तत्वे आहेत. या पाच तत्वांनीच सृष्टीची निर्मीती झाली आहे. ही पाच तत्वे सृष्टीच्या प्रारंभी जेवढे महत्त्वाचे होते तेवढेच आजही महत्वाचे आहेत. मानव आपल्या बुद्धिच्या बळावर या पंचमहाभूतांमध्ये काही बदल करत असेल, त्यांना छेडत असेल तर आपणांस अशा महामारी सारख्या अनेक समस्यांना / दुष्परिणामांना सामोरे जावे लागणार आहे.

वैदिक वाड्•मयात पंचमहाभूत तत्वांचे मानवी करण केले आहे. येथे अग्नानीला देवता मानन्यात आले आहे. तसेच आकाश, वायु, जल यांनाही देवता मानन्यात आले आहे. अथर्ववेदात पृथ्वी सूक्तात म्हणले आहे की,

" माताभूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

पर्जन्यःपिता ॥१२॥

अर्थात भूमी आई आहे. मी पृथ्वीचा पुत्र आहे. पर्जन्य पिता आहे.

तसेच अथर्ववेदातील द्वादश कांडातील पृथिवी सूक्तात भूमिवर्णन करत असता असे म्हणले आहे की, नाना विध समर्थ

ओषधींना धारण करणारी ही पृथ्वी देवता आमचा उत्कर्ष करो. सागर- सरितांचे विपुल जल, शेतीने उत्पन्न झालेले उत्कृष्ट धान्य, तसेच सजीव प्राणी यांनी समृद्ध असणारी भूमि देवी आमच्या धेन्वादिपशूंना विपुल अन्न प्रदान करो. धेनू, अश्व, पक्षी आदींची सुखदात्री भूमी आम्हास भाग्य आणि तेज प्रदान करो. सर्व व्यापक अग्निला धारण करणारी, सर्वपोषक, रत्न आणि हिपण्यगर्भा, सर्वाधार, सर्वसमावेशक भूमी धन प्रदान करो. सेवक सदृश जल जिच्या ठायी अहोरात्र न चुकता संचार करते ती भूमी देवी आम्हास विपुल अन्न आणि तेज प्रदान करो. हे पृथिवी देवी ! तुझ्याठायीचे हिमयुक्त पर्वत आणि अरण्ये आम्हास सुखदायक होवोत. पोषक, कृषियुक्त, वृक्षसंपन्न, अनेक रूपधारिणी आणि स्थिर अशा सुरक्षित पृथ्वीवर आम्हास अपमृत्यु रहित जीवन प्राप्त होवो. पितृस्वरूप पर्जन्य आमचे पोषण करो. भूमीचे ठायी निवास करणारा अग्नि ओषधी, जल, अश्म, मानव (द्विपाद प्राणी) तसेच धेनुअश्व (चतुष्पाद प्राणी) या सर्वामध्ये ही निवास करतो. द्युलोकात प्रकाशणारा, तसेच अंतरिक्षात आणि मर्त्यलोकांमध्ये विद्यमान असणारा अग्निदेवांना हवी पोहोचवितो. काळजीने युक्त असे अग्नि वस्त्रल्यालेली पृथ्वी देवी मला तेजस्वी बनवो. शिलाखंड, लहान दगड तसेच धूलिकणांनी युक्त अशी हिरण्यगर्भा पृथ्वी आम्हास आधार देवो. स्थिर वनस्पती आणि वृक्षांनी युक्त अशा सर्वगुण संपन्न आणि सुरक्षित भूमिदेवीचे आम्ही स्तव न करतो. सर्वांना आश्रय देणाऱ्या, शोधक, सहनशील, ज्ञानवृद्ध, शक्तिदायक, पोषक आणि घृतयुक्त अन्न धारक पृथ्वीची आम्ही प्रार्थना करतो. तांदूळ, गहू पिकविणाऱ्या पर्जन्य समृद्ध आणि पर्जन्यपुष्ट भूमीला वंदन असो. द्यावा पृथ्वी आणि अंतरिक्ष, अग्नि

आणि सूर्य, जल, तसेच समस्त देव मला मेधा (धारणाशक्ती) आणि प्रज्ञा (आकलन शक्ती) प्रदान करो.

सृष्टीचे कार्य व्यवस्थित चालण्यासाठी धर्म नियमाची आवश्यकता आहे. धर्म नियम म्हणजे शाश्वत सत्य होय. या शाश्वत, सनातन सत्याच्या आधारावरच पृथ्वी आपल्या स्थानावर आहे. आकाश आपल्या स्थानावर आहे. चंद्र, सुर्य आपल्या वेळेवर उगवतात, सृष्टीला प्रकाशित करतात आणि आपल्या वेळेवर अस्तास ही जातात. जल हे समुद्र, नदी, तलाव, इत्यादी मध्ये असते. ही जी स्थिती आहे तिला धर्म नियम म्हणतात. चराचर प्राण्यांच्या संपोषनासाठी आणि धारणेसाठी या धर्म नियमांची आवश्यकता आहे. जर सुर्याने, चंद्राने आपले धर्म नियम सांभाळले नाहीतर संपूर्ण सृष्टी अंधकारमय होईल. वैदिक साहित्यात याची माहिती मिळते. पर्यावरण सुव्यवस्थेसाठी या धर्म नियमांची अत्यंत आवश्यकता आहे. या धर्मनियमांध्ये कुठली ही कृत्रिमता आणू नये.

आज मोठ्या प्रमाणात वृक्ष तोड केली आहे. महर्षी वाल्मिकींनी वृक्षांना पुत्र मानले आहे.

वैदिक साहित्यात पृथ्वीचे संरक्षण सांगितले आहे. "मा आपो हिंसी।मा औषधि हिंसी।" वृक्षांना तोडू नका. नद्या स्वच्छ ठेवा. याचा अर्थ असा आहे की, वैदिक साहित्यातून आपणास पर्यावरणाचे संरक्षण कसे करावे याचे ज्ञानच मिळते. असे म्हणले तर वावगे ठरणार नाही. वैदिक साहित्यात भूमी, जल, वृक्ष, औषधि (वनस्पति) आदि तत्वांची देवता रूपात स्तुती सूक्तांच्या माध्यमातून मिळते. अग्नि, इंद्र, सोम इत्यादी अनेक सूक्तांमध्ये नैसर्गिक शक्तींचे स्तवन केले आहे. अग्निने रौद्ररूप धारणकरूनये, इंद्र आपणास पाऊस देवो,

सोम इत्यादींनी आपले रक्षण करावे यासाठी ऋचात्मक स्तुति आल्या आहेत.

एकंदरीत असे म्हणता येईल की आज पर्यावरणातील प्रदूषण ही केवळ भारतातीलच नाही तर वैश्विक समस्या बनली आहे. यावर एक मात्र उपाय म्हणजे वैदिक साहित्याचे चिंतन करून त्यानुसार आचरण करणे आवश्यक आहे.

संदर्भ

1. इमानि पंचमहाभूतानि पृथ्वी वायुराकाश आपो ज्योतिषी – सुबोध उपनिषत्संग्रह, भाग पहिला, पृ. क्र. २७९
2. माताभूमिः पुत्रोअहं पृथिव्याः।पर्जन्यःपिता ॥ - NTA UGC - नेट/ जेआरएफ / सेट, संस्कृत पेपर - २, अरिहन्त पब्लिकेशन्स , पृ. क्र. ४६
3. अथर्व वेदाचे मराठी भाषांतर – लेखक महामहोपाध्याय विद्यानिधी डॉ. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्र कोश मंडळ, पुणे - ४, पृ. क्र. ३३४ , ३३५ , ३३६

***

vfHkKku ’kkdry i;koj.k vH;kl

ik- f’kYik f’kokthjko ,edj

lk;Ul egkfo|ky;] uknM-

ikLrkfod

lLdr lfgR;kP;k nkyukr fulx lkn;kpk lj[k lxe vkiY;kyk fofo/k dkO; dFkklkxjkru igko;kl feGrk ekuoh thou txr vlrkuk ekuokyk vUu] ik.kh] okjk] ;kcjkcj fulx lkn;kpk lgokli.k ro<kp egRokpk vlrk] lLdr lkfgR;kr dfo ifrHkk ikgr vlrkuk dfouh vkiY;k ifrHkk ” ’kDrh}kj i;koj.kkpk mYy[k vfr’k; lnjjhR;k dyk vkg- vfHkKku ” ’kkdry e/khy i;koj.kkpk vH;kl ldYiuk fo"k; foopu 'kdryp o{kkojhy ie rlp ouT;kRLukieh 'kdryk] dljo{k rlp Hkkjrh; lLdrhe/; vkeo{kkyk exye; ekuY;k tkr] R;k fo"k;hph ekfgrh rlp o{kkdMu 'kdryp vkHkj.k HkV vkeetjhp Lokxr bR;knh fo"k;h vki.k lfoLrj ikg.kkj vkgkr-

i;koj.kuk’ku] u’;fUr lotUro %A

iou % n’Vrk ;kfr] idfrfodrk;rAA 1AA

i;koj.k inf’kr >kY;ku loik.kh u"V idfr fodr gkr] g i;koj.k fVdu Bo.;klkBh dfouh vkiY;k lLdr lfgR;kr ifrHkk ” ’kDrh}kj fofo/k o{k oyh b- P;k vk/kkj fulx lkn; n"Vhl vk.ku n.;kpk i;Ru dyk vkg-

iLrr fBdk.kh lLdr lkfgR;kpk tud Eg.ku vkG[kY;k tk.kkÚ;k dkfynklkP;k fofo/k dkO;jpuk ifl/n vkgr] e?knr] j?ko’ke vfHkKku ” ’kkdry R;kidh iLrr fBdk.kh vfHkKku ’kkdry egkdkO;kpk i;koj.kkRed vH;kl vki.k ikg.kkj vkgkr-

ldYiuk

vfHkKku ” ’kkdry ukVd fyfgy xy R;kyk dkgh gtkj o"k ykVy xy rjhgh v|kigh ykdkP;k eukrhy R;k ukVdk fo"k;hph xkMh deh >kyh ukgh] dk.kR;kgh lkfgR;drhP;k Fkkji.kkph ghp dlkVh vkg- 'kkdry R;k dlkVhyk mrjyy vkg brdp u0g rj lLdr

Hkk"kr vlyy g ukVd ijn'kkr vl.kkÚ;kuk oM ykoy vkg dfo dyx: dkfynklkp txifl/n o lokxhu lnj vfHkKku" 'kkdry g ukVd gk;] txHkj xktr vlyy Hkkjrkp;k vfHkekukp LFkku vlyy vkg-

iLrr ukVdke/; fulxk'kh vlyy ie vki.kkl igko;kl feG.kkj vkg- 'kkdrykrhy fulx lpru vkg brdp u0g rj ekuoh Hkkoukuhgh ;Dr vkg] ;k fBdk.kh ekuo o fulx ;kph ,d:irk >kyyh vkg v'kh eukK ,d:irk vU;= vkiY;kyk fnlko;kph ukgh- ikru iFke 0;oLFkfr ty ;"ekLoihr"k;k uknRr fi; e>Mukf"Hork Lugu ;k iYyoeA 'kdryk o{kkuk vkiy fe= ekur gkrh r i.k 'kdryyk vkiyk cfgu ekur gkr Eg.ku rj 'kdryk lkljh tkrkuk ekxfyd oL= inku djr-

vfHkKku" 'kkdry ;k ukVdke/; rikoukrhy o{kkoj 'kdryp vl.kkj ftokikM ie vki.kkl ;kr fnlu ;r] R;ke/; o{k yrk brj fulx lkfu/;kr jkg.;kpk ft0gkGk fnlu ;rk-

fo"k; fuopu

l/;k i;koj.k iFohojhy ik.;klkBh ie[k i'u cuu ekuorP;k eukyk eFkhr djr vkg] i;koj.kkph leL;k LFkkuh; fdok ,dn'kh; ukgh rj gh fo'o0;kih leL;k cuu idV >kyk vkg-

i;koj.k vkf.k idfr ;kr lEcU/k vkg i;koj.kkpk vFk ifj $ vkoj.k vFkkr ifjpk vFk pgcktu o vkoj.kkpk vFk vkg vkPNknu- ouioP;k 138 & 25 0;k "ykd

,dk o{kkfg;kxke Hkor ox dykfUor %

pR;k Hkokfr fuKkfrjpuh; lifYtr %AA 3AA

T;k xkoke/; QG iku ;ku ifji.k o{k vkgr r nokyk;k iek.k vkg-

vgk ,'kk oj tUe lo ik.;ithoueA

/kU;k egh:gk ;H;k fujk'kk ;kfUr ukfFku %

lo ik.khek=koj midkj dj.kkÚ;k o{kkpk tUe J"B vkg g o{k /kU; vkgr dh T;kiklu ;kpd d/khgh fujk'k gkÅu tkr ukgh- vfHkKku" 'kkdry ,d i;koj.k vH;kl ikgr vlrkuk vfHkKku" 'kkdry ukVdkrhy i;koj.k vH;kl ikgr vlrkuk-

lf"irk % QyoUr'o ri;Urhg ekuokuA

o{kn i=or o{kkLrkj;fUr ij= pAA 4AA

QG vkf.k Qy vl.kkj o{k eu";kyk rlr djrkr lektfgrkr o{kkjkiu dj.kkj 0;Drhp ijykdfrgk o{k vlrkr-

v'kkp o{kkojhy ie vl.kkjh 'kdryk gk;- rikoukr vl.;kp o{kkoj 'kdUryp HkkoMkoj vlko rl ie vkg Lor % 'kdUryk yrk:i vkg vl rhP;k ef=.khuk okVr vkJekrhy o{k t.k 'kdryp HkkoMp vkgr ;kru rhp o{kkojhy ie fnlu ;r-

uoekfydkyrp 'kdUryu ekB;k dkrkdu ^ouT;kRluk* vl uko Boy vkg] ;k ouT;kRlroj 'kdryp ik.kiyhdM ie vkg- ,d oG rh Lor% yk foljy i.k ouT;kLrluyk folj.k 'kD; ukgh-

txkrY;k lokr egkx elkY;kP;k inkFkkidh ,d Eg.ku dljyk vkG[ky tkr dk"ehje/; xyh vud 'krd d'kjkph 'krh dyh tkr dljpk okij vkiY;k vkjkX;klkBh Qk;nkpk vkg- FkMhiklu cpko gk.;klkBh dlj e/kkr felGu [kkYy tkr- o;kekukulkj foljkGi.kgh nj gkr] nufnu thoukrhy leL;koj dlj g jkeck.k mik; vkg-

v'kk ;k dljo{kkpk mYy[k vfHkKku"'kkdrye/; djr vlrkuk rikoukrhy o{kkojhy ie lkxr vlrkuk okÚ;ku >G>G.kkÚ;k iYyo:ih vxyhuh dljo{k vkiY;kyk ckykfor vkg vl okVu 'kdUryk R;kP;k toG tkr] Lor% 'kdUryk yrk:i vkg vl frP;k ef=.khuk okVr rh dljo{kkP;k toG mHkh jkghyh vlrk R;k o{kkpk yr'kh l;kx >kY;kpk Hkkl R;kuk gkr vkg-

dlj o{kk % jkxk.kkeigkjdk % A

i';rku egkHkkxku ijkcdkUrthforku

okro"kkrifgeku lgUtj okl;fUr u %AA 5AA

o{k ,o< egku vlrkr dh r ijkidklkBh vkiy thou txr vlrkr r o"kk FkMh Åu ;kl Lor% lgu djhr vlrkr-

QGkpk jktk Eg.ku vkG[ky tkr r vke gk;- vkck cyo/kd vkg Fkdok nj dj.;kl mi;kxh vkg- vkck gk 'kjhjkph m".krk deh djr-

v'kk ;k vker:fo"k;h vfHkKku"'kkdUrye/; vfr'k; lnjjhR;k o.ku dy vkg- vker:fo"k;h lkxrkuk uoekfydk vkf.k

vker: ;kp ehyu vR;r Lej.kh; dkGh >ky vkg- 'kdUryk lkljh tkrkuk r 'kdUryyk fujki n;k vl vkeo{kkuk fouohr 0;Fk tf.k 'kD;p ukgh dkdhGkP;k dtukP;k :iku R;kuh 'kdUryyk vuKk nhyh vkg-

vl EgVY;k tkr dh L=hp lkn; g nkxhU;ku 'kkHku fnlr i.k iok g nkfxu Eg.kt Qy iku ;k iklu r;kj dy tk;p vl-

fofo/k /kexFkkru L=hP;k ;k lkn; ok<o.kkj nkfxu gk; vkf.k gp L=h lkn; lkxr vlrkuk frlÚ;k vdkr T;k dtkr 'kdUryk clyh gkrh rk dt lkMu tk.k frP;k vxnh thokoj vky vkg- rFku tkrkuk R;k dtkpk fujki ?krkuk vkJekrhy o{kkuh lkljh tk.;kl r;kj >kyY;k 'kdUryyk vud vkHkj.k nhyh vkg- ,dko{kku pn/koy ndy fny- nlÚ;ku yk{kjl fnyk brj o{kkuh 'kdryp lkn; f}x.khr dj.;kl vkHkj.k fnyh vkgr- i.k rhy vydkjkph LoHkkor % vkoM vlugh rh R;kph ikyoh [kMhr ul-

Ekkuoh thou txr vlrkuk eu"; gk ,[kkn;k xk"Vhoj thokikM ie djr vlrkuk R;kP;k fo;kxku R;kyk n%[k ikgpr vlr- vlp n%[k 'kdUryyk oukru lkljh tkrkuk gkr vlyy nhlu ;r dkj.k 'kdUryk gh vkJekrhy o{kkuk vkiY;k HkkoMkiek.k ie djr gkrh 'kdUryp o{kkoj vl mRdV ie vlY;keG rh vkJekru tkr vlrk R;kukgh frP;k fo;kxku n%[k gk.k LoHkkfod vkg- Goeuhuk ;kph tk.kho vkg ;keG lkljh tk.kkÚ;k 'kdUryyk fujki n;k vl r vkeo{kkuk fouohr vkgr- vkJekru ckgj iM.;kP;k crkr vlrkukp Hkkfxuhleku vlyY;k ou T;kRLuph fryk vkBo.k gkr vkf.k ekB;k ieku rh frpk fujki ?kr- ,[kkn;k toGP;k ukrokbdkpk fujki ?krkuk tl HkkoukRdVru ckyko rl ckyr ouT;kRLu rÖ;k 'kk[kkckguh eyk vkfyx.k n vktiklu eh ryk njko.kkj v'kk fo;kxku 'kdUryk n%[kh >kyh-

fulxk'kh ,d:irP;k ;k dYiupk vk.k[kh ,d vfo"dkj lgkO;k vdkr fnly ufou vkyY;k vkeetjhp Lokxr nklh vR;r vkReh;ru djhr vkg- fojg0;kdG n';UrkP;k eukrhy Hkkouk'kh ,d:lk >kY;keG vkeetjhp ijkx r;kj >ky ukghr- ekuokp

fulxk'kh vkf.k fulxkp ekuok'kh vly mRd"V rknkRE; bRkD;k ifj.kkedkjd jhrhu vkfo"dr >kyy vU;= fnlko;kp ukgh-

fu"d"k

fulx lkn; g eukyk pkgy yko.kkj vlr vl Eg.krkr dh ,[kknh xk"V tj vki.k ekuru dyh rj R;kfo"k;h eukr :ph fuek.k gkr- ex r i;k;oj.k fo"k;hp dk vluk-

miek dkfynkl% ;kuh vkr ikr vl.kkj J"B dfo dkfynkl ;kuh vfHkKku 'kkdry ;k ukVdkr 'kdryp i;koj.kk'kh vlyy vrV ie nk[kou fny vkg-

'kdryk gh o{kkoj vkiY;k HkkoMkiek.k tho ykor gkrh- rhp fulxk'kh i;koj.kk'kh ?kfu"V lc/k vlyy fnlu ;r-

;kru gh xk"V fun"kukl ;r dh vki.k i;koj.kkp j{k.k dj.k [ki egRokp vkg l/;k ekuoku vkiy thou ,o< 0;Lr dy vkg dh rk Lor%lkBh oG nÅ 'kdr ukgh- eu";kP;k thoukr dke g rj ugehp vlr i.k vkiY;kcjkcj vkiy vktcktp i;koj.k pkxy Bo.k [ki xjtp vkg-

dkj.k i;koj.k lj{khr vly rj vki.k lj{khr jkg-

;= ;= i;koj.kk% lj{khr%A

r= r= ekuo% lj{khr%AA 6AA

Eg.ku vki.k lokuh feGu i;koj.k dl lj{khr Bork ;r ;kdM y{k nÅ-

lnHk xFk lph

1½ dfynkl kph l "Vh & ik- ek/ko nkeknj vkGrdj

2½ vfHkKku 'kkdrye & Mk- jkepn] 'kdj okfGc

3½ i;koj.k'kkL= ,d vH;kl &ik- Mk- r- e- ojkV

4½ vfHkKku 'kkdUrye Mk- xxkl kxj jk;% pk[kEHkk lLdr Hkou 4@8

1. Shloka on Environment Thoughts – Suvichar Shlok -1,
2. Shloka on Environment Thoughts – Suvichar Shlok -3,
3. Shloka on Environment Thoughts – Suvichar Shlok -4,
4. Shloka on Environment Thoughts – Suvichar Shlok -5,
5. Shloka on Environment Thoughts – Suvichar Shlok -6

संस्कृत साहित्यातील पर्यावरण विचारांची सद्यःकालीन उपयुक्तता

प्रा. डॉ. अरुण माधवराव चव्हाण
संस्कृत विभाग
कै. लक्ष्मीबाई देशमुख महिला महाविद्यालय, परळी वैजनाथ.

चराचरासृष्टी आणि मानवाचा संबंध हा सृष्टीच्या आरंभ काळापासूनच आहे. मनुष्य हा सृष्टी चक्राचा महत्त्वाचा अंगभूत घटक आहे. सृष्टी चक्राचा विचार करताना मनुष्य जिथे राहतो त्या परिवेशाचा अर्थातच पर्यावरणाचा विचार सर्वप्रथम करणे क्रमप्राप्त आहे. पर्यावरण शब्दाचा ढोबळमानाने अर्थ विचारात घ्यायचा तर 'परितः आवरणं पर्यावरण म्इतिवाच्यार्थः।' अर्थात् आपल्या सर्वबाजूंनी जे काही आवरण आहे तेच पर्यावरण होय. शास्त्रीय पद्धतीने पर्यावरणाची व्याख्या पाहायची झाल्यास मराठी विश्वकोशातील व्याख्या अत्यंत समर्पक आहे. "शिलावरण, जलावरण, जीवावरण व वातावरण यामुख्य भूवैज्ञानिक घटकांतील सतत चालू असणाऱ्या प्रक्रिया व आंतरक्रियायांचा परिणाम म्हणजे पर्यावरण होय."[1] पर्यावरणाच्या विचारानंतर आता प्रदूषणाचा विचार ओघाने आलाच.

पर्यावरणाचे एक नैसर्गिक चक्र आहे त्या चक्रात व्यवधान आलंकी मग प्रदूषण होतं किंवा असेही म्हटलं जातं की, जमीन, हवा, पाणी, अन्न इत्यादी मध्ये सजीवांना घातक असलेले पदार्थ मिसळणे म्हणजे प्रदूषण होय. सध्याच्या काळात संपूर्ण पर्यावरणाचा समतोल ढासाळलेला दिसतो. पर्यावरणात रात्रंदिवस घातक पदार्थ फार

मोठ्या प्रमाणावर मिसळले जात आहेत. जीवाश्म इंधनाचा अतिरेकी वापर संपूर्ण जीवसृष्टीलाच नाशाकडे वेगाने घेऊन जात आहे. गुगल स्रोता नुसार आणि इंटरनॅशनल एनर्जी एजन्सीच्या सर्वेनुसार दरवर्षी जगात जवळपास 800 कोटी टन इतका कोळसा जाळला जातो. इसवी सन 2021 यावर्षाचा विचार करता वर्षभरात 420 कोटी टन तेल (जीवाश्म इंधन) जगाने वापरले त्याच्या ने अनेक प्रकारच्या विषारी वायूचा शिरकाव जगात झाला. तेलाची ही मागणी दरवर्षी वाढतच जात आहे याच वर्षांमध्ये जगात 39 कोटी टन पेक्षा अधिक वजनाचे प्लास्टिक तयार करून वापरले गेले. एवढ्या मोठ्या प्रमाणावर जीवाश्म इंधन व प्लास्टिक तयार करून ते वापरणं किती प्रदूषणकारी ठरत असेल याचा विचार करण्याची गरज आहे. एवढेच काय नद्यांतून उपसली जाणारी वाळू, शेतीच्या कामासाठी तयार केली जाणारी कीटकनाशके व खते यांचा प्रचंड वापर, नद्यांमध्ये प्रदूषित पाणी प्रक्रिया न करता सरळ सोडून देणे, मोठ्या प्रमाणावर तयार केली जाणारी इलेक्ट्रिक व इलेक्ट्रॉनिक साधनं, मोठ्या प्रमाणावर वापरली जाणारी प्रति जैविके, सोने- चांदी-लोखंड इत्यादी धातूंचे मोठ्या प्रमाणावर होत असलेले उत्खनन, फार मोठ्या प्रमाणावर चालणारी जंगलतोड, दरवर्षी मोठ्या प्रमाणावर होणारी जमिनीची धूप, प्राण्यांची व पशु पक्ष्यांची ही मोठ्या प्रमाणावर केली जाणारी कत्तल अशा कितीतरी बाबी पर्यावरणाचा वेगाने ऱ्हास करताना दिसतात. मोठ्या यंत्रांनी पृथ्वीचे चाललेले अहर्निशदोहन हे ही प्रचंड वेगाने सृष्टीला विनाशाकडे घेऊन जात आहे. 'अहर्निशंसेवामहे ।' च्या ऐवजी आताचा मानव 'अहर्निशंदोहा महै।' (आम्ही रात्रंदिवस दोहन करू.) असा मंत्र जपतो आहे. या सर्व

कु चक्रातून बाहेर पडण्याचा राजमार्ग प्राचीन भारतीय मनीषींनी पूर्वीच प्रशस्त करून ठेवला आहे. त्याची चर्चा येथे केली जाणार आहे.

भारतीय संस्कृतीच्या दृष्टिकोनातून मनुष्य हा निसर्गाचा रक्षक व व्यवस्थापक मानला गेलेला आहे. दुर्दैवाने तोच आज निसर्गाचा भक्षक बनला आहे हा भाग निराळा. पर्यावरणाची उत्तम सुसंवाद ठेवण्याचा बोध भारतीय मनात ठासून भरला आहे. वेदमंत्र, ब्राह्मण, अरण्यकग्रंथ, उपनिषदे, रामायण, महाभारत, इत्यादीकाव्ये, पुराण, स्मृतीग्रंथ, भास कालिदासादिकांची काव्ये आणि नाटके, उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य असा सुविशाल संस्कृत साहित्याचा विस्तार आहे. यातून वाहणारा निसर्ग प्रेमाचा झरा भारतीय मनाला तृप्त करत आला आहे आणि सध्या ही तृप्त करतो आहे. या तृप्तीच्या परिणाम स्वरूप भारतीय लोकगीते, लोकनृत्य, लोककथा, सण-उत्सव हे सर्व निसर्गाप्रती अपार प्रेम प्रकट करतात. निसर्गाप्रती कृतज्ञतेची भावना भारतीय मनात ठासून भरलेली आहे. हे असे होण्यात संस्कृत साहित्याचे विचारच फार मोठे कारण आहे. अथर्ववेदात एक मंत्र येतो -

यत्तेभूमे विखनामि क्षिप्रंतदपिरोहतु। माते मर्मविवृग्वरिमाते हृदय मर्पितम्॥[2]

अर्थात्हे भूमी ! तुझ्या वृक्षवेलींना मी असे तोडावे जेणे करून त्या पुन्हा लगेचच अंकुरित व्हाव्यात त्यांना पूर्णपणे तोडून नष्ट करून माझ्या कडून तुझ्या मर्मावर आघात होऊ नये. या मंत्रावरून संस्कृत साहित्याचा पर्यावरण विचार किती सखोल आणि दूरदर्शी आहे हे स्पष्ट होते. सध्या प्लास्टिक इत्यादींचा संदर्भात Reduce, Reuse and Recycle ही त्रिसूत्री सांगितली जाते. हे तत्व सर्वत्र लागू

पडणारे तत्त्व आहे. बारकाईने पाहिल्यास उपर्युक्त मंत्रात हेच तत्वबीज स्वरूपात दिसून येते. भक्तीमय अंतःकरण असणाऱ्या ऋषींनी या तत्त्वाला भावनिक रूप दिलेले आहे. ऋषी म्हणतात की, वृक्षवेलींना समूळ उपटणे म्हणजे त्यांच्या हृदयावर आघात करून मारण्या सारखे आहे. जसे एखाद्याच्या मर्मावर आघात केला की तो मरून जातो त्या प्रमाणे वृक्षवेलींना तोडलेकी त्यांच्या ही मर्मावर आघात होऊन त्या मरून जातात. म्हणून वृक्षवेलींना तोडून संपवण्यापेक्षा खुडून वापरण्याचा सल्ला ऋषी देतात. अन्य एका मंत्रामध्ये ऋषी म्हणतात की, जिथे वन असेल तिथे अनावृष्टी होत नाही आणि अतिवृष्टीचा देखील त्यावर काहीच दुष्परिणाम होत नाही. तो मंत्र असा -

अबुध्नेराजा वरुणो वनस्योर्ध्वंस्तूपंददते पूतदक्षः।
नीचीनाःस्युरूपरिबुध्न एषास्मे अन्तर्निहिताः केतवःस्युः॥[3]

अर्थात्सूर्याचे किरण अंतरिक्षात पाण्याचा संचय करून आवर्षणाच्या काळातही पर्जन्याला वनांवर पडण्याची प्रेरणा देतात. म्हणून जंगलात कधी कोरडा दुष्काळ पडत नाही. तिथे अतिवृष्टी झाली तरी ओला दुष्काळ पडत नाही.[4] आज एकविसाव्या शतकातही मार्गदर्शक ठरणारा असा हा ऋग्वेदाचा मंत्र आहे. जंगल असेल तर ओला किंवा कोरडा असा कसलाच दुष्काळ संभवत नाही म्हणून जंगलांचे संगोपन व संवर्धन सर्वत्र झाले पाहिजे, हेच हा मंत्र सुचवितो. मुळात अगदी अलीकडे म्हणजे इसवीसन 1972 च्या स्टॉकहोम येथे पारपडलेल्या संयुक्त राष्ट्र संमेलनात पर्यावरणाकडे जगाचे लक्ष वेधले. भारतात तर 1 नोव्हेंबर 1980 रोजी पर्यावरण मंत्रालय स्थापिले. हजारो वर्षांपूर्वी वृक्षां विषयी आणि जंगलांविषयी ममत्वाचा हा वैदिक विचार कुठे ! आणि तहान

लागल्यावर विहीर खोदण्या सारखा आधुनिक पर्यावरणीय विचार कुठे! प्रदूषणाचा राक्षस आवासून पुढे उभा ठाकलेला असताना पर्यावरणाच्या चर्चा घडतात आणि त्यावर अंमलबजावणी मात्र नगण्य प्रमाणात होते, हे दुर्दैव नाही का ? यासाठीच एका कवीने उद्विग्न होऊन म्हणून ठेवले आहे.

अवनीमवनी कुर्वन्न सांकुर्वंश्चनीरसाम्।
धरामप्य धरी कुर्वन्मानवः किंनदानवः॥

म्हणजे अवनीला अर्थात पृथ्वीला वन विरहित करणारा रसा म्हणजे जलमय पृथ्वीला जलविरहित करणारा आणि सर्वकाही धारण करणाऱ्या या धरेलाच निराधार करणारा मानव हा दानव नव्हे का ?

संस्कृत साहित्यात मात्र मानवाची निसर्गा प्रती कशी भावना असावी, याचे उत्तम दाखले सापडतात अथर्ववेदात म्हटले आहे - 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'[5] म्हणजे ही पृथ्वी माझी माता आहे आणि मी तिचा पुत्र. किती जिव्हाळ्याची भावना आहे ही! या आर्द्रभावनेतूनच प्राचीन भारतीयांनी निसर्गाचे पोषण आणि संवर्धन केले होते. अथर्ववेदातच अन्यत्र म्हटले आहे – विश्वस्वं मातर मोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्। शिवांस्यो नाम नुचरेम विश्वहा॥[6]

अर्थात्जिथे सर्व प्रकारच्या औषधी उगवतात अशी ती पृथ्वी, कल्याणकारक व सुखदायक आहे. त्या मातृभूमीची आम्ही सेवा करावी. अर्थातच इथे पृथ्वीच्या प्रतीकृतज्ञता प्रकट केली आहे. ज्या पृथ्वीने जगण्यासाठी अन्न आणि औषधी दिल्या त्या पृथ्वीची आम्ही सेवा केली पाहिजे, हा भाव ऋषींच्या मनी दिसतो. सेवा करणे याचा अर्थ पृथ्वीची सर्व प्रकारे निगा राखणे असा आहे. या शिवाय सुद्धा वैदिक साहित्यात पदोपदी निसर्गा विषयी प्रेम दिसून येते.

उपनिषदां मधून प्रकट झालेला पर्यावरणाचा विचार आजच्या काळाला मार्गदर्शक असाच आहे. 'सर्वेभवन्तु सुखिनः।'[7] हे बृहदारण्यकोपनिषदाचे वचन फक्त माणसांनाच लागू होणारे नाही, तर प्राणीमात्रांना व वनस्पतींनाही लागू पडणारे आहे. या सर्वांनी सुखाने नांदावे असा आशय यातून व्यक्त होताना दिसतो. महोपनिषदा मधल्या 'वसुधैव कुटुम्बकम्।'[8] या अवघ्या वसुधेलाच कुटुंब माणण्याच्या भावनेत ही चराचर जगत अनुस्युत आहे. महाभारतात देखील तलाव बांधण्याचे व वृक्षारोपणाचे महत्त्व अधोरेखित केले आहे.

सद्वृक्षाः रोप्याः श्रेयोऽर्थिनासदा। पुत्रवद्परिपाल्या श्चपुत्रास्ते
धर्मतःस्मृताः॥[9]

पराकोटीच्या वृक्ष प्रेमाची भावना प्रस्तुत श्लोकात व्यक्त झाली आहे. तलाव तयार करून त्याच्या सभोवार चांगल्या वृक्षांची लागवड करावी आणि त्यांचे मुलाबाळांप्रमाणे संगोपन करावे कारण ती धर्म संबंधाने माणसाची मुलेबाळे आहेत. असे वागणाऱ्याला नक्कीच श्रेय प्राप्ती होते हे ही यात महर्षी व्यासांनी सांगितले आहे. महाभारताचे अध्यायच्या अध्याय भूमी, तलाव, वृक्षवेली यांचे संगोपन करण्याच्या उपदेशात महाभारताच्या रचनाकारांनी खर्ची घातले आहेत. हजारो वर्षांपूर्वी सुद्धा, वन-उपवनांनी पृथ्वी भरलेली असताना सुद्धा, प्रदूषणाची कसलीच समस्या भेडसावत नसताना सुद्धा; संस्कृत साहित्यिकांची पर्यावरणा विषयीची जागरूकता अगदीच थक्क तर करायला लावतेच शिवाय त्यांचा दूरदृष्टे पणा सुद्धा अभिव्यक्त करते.

पुराण साहित्यात ही फार मोठ्या प्रमाणावर पर्यावरणा विषयीचे चिंतन आलेले आहे. वानगी दाखल विष्णु धर्मोत्तर पुराणात वर्णन येते -

एकोऽपिरो पितोवृक्ष: पुत्रकार्य करोभवेत्।
देवान्प्रसूनैः प्रीणा तिछाय याचा तिथींस्तथा॥[10]

लावलेला एक वृक्ष हा मुलाबाळां प्रमाणे कार्य करणारा असतो. तो देवांना आपल्या फुलांनी तर अतिथींना आपल्या सावलीने संतुष्ट करतो. मुलगा जसा देवयज्ञ व अतिथीयज्ञ संपादन करतो तसा वृक्ष देखील या यज्ञांचे संपादन करतो, म्हणून तो पोटच्या गोळ्या प्रमाणे. पहा कल्पनाच किती मोहक आहे ! भागवत पुराणात 'प्रकृति रक्षति रक्षिता।' असे म्हणून या स्वल्पश्लोकांशात पर्यावरण रक्षणाचे मर्म सांगितले आहे.

अलीकडच्या काव्यांतही संस्कृत साहित्यिकांच्या पर्यावरण प्रेमाची प्रतीती येते. अभिज्ञान शाकुंतलातली शकुंतला तर निसर्ग कन्या म्हणून प्रसिद्धी पावली. तिच्या विषयीच्या एका प्रसिद्ध श्लोकात वृक्षवेली विषयीची तिची भावनोत्कटता प्रकट झालेली आहे. यात शकुंतलेची पाठवणी करणारे कण्वऋषी म्हणत आहेत -

पांतुन प्रथमं व्यवस्य तिजलं युष्मास्व पीतेषुया
नादत्ते प्रिय मण्डना पिभवतां स्नेहे नया पल्लवम्।
आद्येवः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः
सेयंयाति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनु ज्ञायताम्॥[11]

तुम्ही पाणी पिल्या शिवाय जीस्वतः पाणी पिण्याचा विचार देखील करत नसे. नटण्या- मुरडण्याची भारी हौस असतानाही तुमच्या वरील प्रेमा पोटी जी तुमच्या पालवीला तोडत नसे आणि तुमचा पहिला फुलांचा बहर जिच्यासाठी सण उत्सवा सारखा

आनंददायी असे; ती ही शकुंतला आज प्रतिगृही जात आहे. तर मग हे वृक्षांनो ! तुम्ही तिला जाण्याची अनुज्ञाद्या. मानवी मनाच्या पर्यावरणा विषयीच्या ज्या तरल भावना या श्लोकात प्रकट झाल्या आहेत त्या अन्यत्र सापडणे दुर्मिळ. सासरी निघालेल्या एका मुलीचा पदर हरिणाच्या पडसाने ओढावा, 'माझ्या बहिणी सारख्या असलेल्या वनज्योस्नेचा (चमेलीचा) मी निरोप घेते.' असे शकुंतने पतिगृही जाताना म्हणावे, 'गर्भिणी असलेल्या हरणीच्या प्रसूतीची गोड बातमी मला सासरी कळवा' असा शकुंतलेने आग्रह धरावा; अशा सर्वबाबी पाहिल्याकी निसर्ग म्हणजे एक कुटुंब कसा असू शकतो याचा आदर्श वस्तुपाठ समोर येतो. जसा शरीरात प्राण असावा तद्वत संस्कृतच्या संपूर्ण साहित्यात पर्यावरणाचा विचार व्यापलेला आहे. काव्य, नाटक, कथा, कादंबरी, चंपू अशा सर्व विध साहित्यात पर्यावरणाचे उदात्त चिंतन प्रसृत झाले आहे.

अशा प्रकारे संस्कृत साहित्य आणि त्या योगे भारतीय संस्कृती सहजीवनाचा आदर्श सांगणारी संस्कृती आहे. 'मित्रस्यच क्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।'[12] असे म्हणून प्राणी मात्राला आपला मित्र व सखा मानणाऱ्या या संस्कृतीत सर्व प्रकारचे सौख्य सामावलेले आहे. वायु शुद्धीसाठी अग्निहोत्राची योजना असेल, 'नाप्सुमुत्र पुरीषं कुर्यात्।'[13] (म्हणजे पाण्यात मलमूत्र विसर्जन करू नये.) असे म्हणून जलशुद्धीकरणाचा विचार असेल, भूमीला माते समान मानणे असेल किंवा सर्व पशुपक्ष्यांना बांधव समजून त्यांच्या प्रती अहिंसा भाव बाळगण्याचा उपदेश असेल; संस्कृत साहित्यात पर्यावरणाचा परिपूर्ण विचार आपल्याला दिसून येतो. आजची शाश्वत विकासाची संकल्पना या परिपूर्ण अशा संस्कृत साहित्यातील पर्यावरण विचारा शिवाय पुढे जाऊच शकत नाही. रासायनिक खते,

अत्यंत घातक अशी कीटकनाशके यांची उपरती येऊन जैविक शेतीकडे वळू पाहणाऱ्या जगाला जैविक शेतीचा पहिला पाठ शिकविला तो भारतीय ऋषींनी, हे ही इथे विसरता कामानये.

एकूणच पर्यावरणाच्या प्रचंड वेगाने होणाऱ्या ह्रासाच्या या काळात संस्कृत साहित्यातील पर्यावरण विचार हा अत्यंत मार्गदर्शक व उपयोगी ठरणारा आहे. या लेखात सिद्धांतत: तो मांडला असला तरी वृक्षायुर्वेदा सारख्या शाखांमधून त्याचे विस्ताराने प्रात्यक्षिक ज्ञान दिलेले आहे. याशिवाय कृषि पराशर, बृहत्संहिता, काश्यपीय कृषिसूक्तिः, कौटिलीय अर्थशास्त्र, रामायण, महाभारत इत्यादी शेकडो ग्रंथांमधून ही ते दिले आहे. या लेखात पर्यावरण या व्याख्येत केवळ नैसर्गिक पर्यावरणाचा विचार केला आहे. सामाजिक पर्यावरणावर येथे प्रकाश टाकलेला नाही, तो एक वेगळा अभ्यासाचा विषय आहे. पर्यावरण हा विषय अत्यंत व्यापक आहे. संस्कृत साहित्यात ही त्याची व्यापकता अति विस्तृत आहे. या लेखात काही थोडक्याच उदाहरणांनी पर्यावरणाचे प्राचीन चिंतन आजही कसे उपयुक्त आहे ते दर्शविण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. त्यावरून बोध घेऊन सध्याच्या मानवाने पर्यावरणाची जपणूक करण्याचा यत्किंचित ही प्रयत्न केला, तर हा लेखन प्रपंच सार्थक ठरेल.

संदर्भ सूची

१)https://mr.m.wikipedia.org

२) अथर्ववेद१२.१.३५

३) ऋग्वेद१.२४.७

४)वैदिक संपत्ति – पंडित रघुनंदन शर्मा ,माता कलावती धर्मार्थन्यास , पानिपत , हरियाणा , १९९०पृष्ठ६५४

५) अथर्ववेद-१२.१.१२

६) अथर्ववेद - १२.१.१७
७)बृहदारण्यकोनिषद्१.४.१४
८) महोपनिषद् – अध्याय ६श्लोक ७१
९) महाभारत- अनुशासनपर्व , अध्याय ५८ श्लोक ३१
१०)विष्णू धर्मोत्तर पुराण – खंड तीन अध्याय २९७ श्लोक १३
११)अभिज्ञान शाकुन्तलम् – अंक ४ श्लोक १०
१२) यजुर्वेद -३६.१८
१३) तैत्तिरीय आरण्यक -१.२६.७

***

संस्कृत साहित्य व पर्यावरण

प्रा. डॉ. बकुल भगवानराव काबंळे

संजीवनी महाविद्यालय, चापोली ता.चाकुर, जि.लातुर, पिन -४१३५१२.

प्रस्तावना

'संहिताया: भाव: साहित्यम्' म्हणजे सहित शब्द आणि अर्थभाव म्हणजे भावपुर्ण अर्थाने युक्त शब्दांची सहिंता म्हणजे साहित्य होय.[१]

साहित्य समाज जीवनाचा आरसा आहे. असे म्हटले जाते कारण साहित्यातून समाजजीवनाचे प्रतिबिंब झळकते साहित्यातून इतिहासाचे दर्शन घडते, वर्तमान कळतो व भविष्याचा ही सुगावा लागतो म्हणूनच कोणत्याही साहित्याला काळाची मर्यादा राहत नाही, असे हे साहित्य कालातीत ठरते, शाश्वत असते.

साहित्य हे मानवी जीवनाचे अविभाज्य अंग आहे मानवी जीवनाचा असा कोणताही घटक नाही जो साहित्यात दिसत नाही. असाच मानवी जीवनाचा अविभाज्य घटक म्हणजे पर्यावरण होय. ज्या पर्यावरणावर मानवी जीवन अवलंबून आहे. ज्या पर्यावरणा शिवाय मानवी जीवन कल्पीलेच जाऊ शकत नाही अशा पर्यावरणाचा उल्लेख साहित्यातून नाही झाला तरच आश्चर्यच होईल.

पर्यावरण हा शब्दपरी + आवरण = पर्यावरण असा बनला आहे. परी = म्हणजे भोवताल, आणि आवरण म्हणजे वर्तुळ होय. अर्थात पर्यावरण हे आपल्या सभोवतालचे वर्तुळ आहे. त्यात सर्व भौतिक बाबींचा समावेश होतो जसे हवा, पाणी, नदी, डोंगर, माती, वृक्ष इ.

संस्कृत साहित्याचा इतिहास पाहता वैदिक साहित्य हे आद्य साहित्य म्हणून गणले जाते. त्यात अनेक ज्ञानपर विविध श्लोकांच्या संग्रहाला महर्षी व्यासांनी वेगवेगळ्या विषयानुरूप त्यांची विभागणी करून प्रमुख चार संहिता निर्माण केल्या त्यांनाच पुढे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद संबोधन्यात आले.

या वेदांच्या अभ्यासा अंती असे लक्षात येते की मानवी जीवनाचा आधार, मानवी जीवनाचे अभयस्थानच जणु हे सभोवतीच्या पर्यावरणातील घटक आहेत. ज्यांना ईश्वरीय रूप देवून त्यांची वर्णने या ग्रंथांमधून केली आहेत जसे अग्नि, वरुण उषा, रूद्र, सवितृ, सोम इत्यादी या वेद अध्ययनावरून असे लक्षात येते की जणू प्रकृतीची वेगवेगळी रूपे समजून घेण्यासाठी आणि समजावून सांगण्यासाठी ऋषी- मुनींनी त्या अधिष्ठित शक्तींना देवतांच्या रुपात प्रकट केले, यावरुन अगदी अनादी काळापासून संस्कृत साहित्य व पर्यावरणाचा घनिष्ठ सबंध येथे वर्णन करता येतो. पुढे दर्शन ग्रंथाद्वारे प्रकृति आणि पुरुष या संकल्पना खूपच विवेचक पद्धतीने मांडलेल्य दिसतात. सांख्यकारिकेत तर पंचमहाभूतांच्य उत्पत्तीस प्रकृति व पुरुषालाच कारणीभूत मानले आहे.

"प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ् कारस्तस्माद् गणश्चषोडशकः ।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्चम्यःपञ्चभूतानी ।।

अर्थात पुरुष आणि प्रकृतिच्या संयोगामुळे प्रकृति पासून महत् (बुदधी) त्या महत्तत्वा पासून अहंकार, अहंकारापासून सोळा रुपांचा समूह उत्पन्न होतो या सोळा समुहामध्ये स्थित पंचतन्माक्षानी पंचमहाभूत उत्पन्न होतात.

म्हणजेच वरील पंचपरमानुंनी पंचमहाभूतांचा अविर्भाव होतो. एकंदरीत पर्यावरण निर्मितीस कारणीभुत ठरणाऱ्या पचंमहाभुतांचे विवेचन दर्शन साहित्यातून मोठ्या प्रमाणात झालेले

दिसते. तसेच महाकाव्यांच्या तर लक्षणांमध्येच पर्यावरणीय बाबींचा उल्लेख आढळतो जसे.

संध्या सूर्यन्दुर जनी प्रदोष ध्वान्तवासरा: प्रात र्मध्याह्न मृगया शैलर्तुवन सागरा: [५]

अर्थात - संध्या, सुर्य, चंद्रमा, रात्री, प्रदोष, अन्धकार, दिवस, प्रातःकाल, मध्यान्ह, मृगया, (शिकार) पर्वत, ऋतु (सहा) वन (आरण्य), समुद्र इत्यादीचे यथायोग्य वर्णन असावे असे म्हटले आहे. म्हणजेच पर्यावरणीय घटकांचा उल्लेख हा महाकाव्यात अनिवार्य आहे. महाभारता सारख्या सर्व समावेशक ग्रंथामध्ये वृक्ष हे सजीव असल्याचे अनेक दाखले शान्ति पर्वामध्ये वर्णिले आहेत. उदा:

"ग्रहणात्सुखदुः खस्यछिन्नस्यच विरोहणात्।
जीवंपश्यामि वृक्षांनाम चैतन्यंन विद्यते॥[६]

अर्थात- वृक्ष तोडल्यानंतर पुन्हा अंकुरीत होण्यामुळे, वृक्षांना सुख व दुःखाचे ज्ञान होत असल्याने वृक्षांमध्ये चैतन्य (सजीवता) आहे असे मी पाहतो,

अशा प्रकारे वृक्ष पाहू शकतात, त्यांच्यात स्पर्शज्ञान आहे व ते ऐकू शकतात व त्यांच्यात श्रवण क्षमता आहे वृक्ष स्वाच्छोश्वास करू शकतात. वृक्षांमध्ये रस ग्रहण क्षमता आहे ते मुळांच्या मदतीने पाणी पितात, आणि ते अन्न ग्रहण करतात ते पचवितात त्यामुळे स्निग्धता येऊन त्यांची वाढ होते. या सर्व लक्षणांना वृक्ष दाखवित असल्याने ते सजीव आहेत मी त्यांच्यात चैतन्य पाहतो असे म्हटले आहे. वृक्षांची सजीवता स्वीकारून महाभारत थांबत नाही तर अशा वृक्षांचे रोपण करून त्यांना मुला प्रमाणे सांभाळले तर एका पुत्रा

मुळे जी फल प्राप्ती होते. ती वृक्ष रोपणामुळे ही होते असे म्हटले आहे,

"पुष्पिताः फलवन्तश्चतर्पयन्ती हमानवान्।
वृक्षदं पुत्रवद्वृक्षास्तारयन्ति परत्रतु।।
तस्मात्तडागेसद्वृक्षाः रोप्याःश्रेयाऽर्थिनासदा।
पुत्रवत्परिपाल्याश्चपुत्रास्तेधर्मतःस्मृताः।। '७

अर्थात या जगात फुले आणि फळांनी परिपुर्ण वृक्ष मनुष्यांना तृप्त करतात, जो वृक्षांचे दान करतो, त्याला वृक्ष परलोकात मुला समान पार करतात (तारुण नेतात) त्यामुळे कल्याणाची इच्छा करणाऱ्या माणसाने नेहमी तळयाच्या काठावर वृक्षांची लागवड करावी आणि त्यांचे आपल्या मुला प्रमाणे रक्षण करावे. कारण वृक्षधर्मानुसार पुत्र मानले जातात,

इतका गहण विचार महाभारतात मांडलेला दिसतो आज जेथे आधुनिक म्हटल्या जाणाऱ्या युगातही मुलाच्या अट्टाहासा पोटी मुलींचा सर्रास बळी दिला जातो. तेथे वृक्षांना पुत्र मानावे हा विचार किती पर्यावरण हिताचा दिसतो, या प्रमाणेच रामायण या अर्षमहाकाव्यामध्येही निसर्ग आणि मानव यांचा संबंध पदोपदी दिसून येतो

श्रीरामांच्या वनगमनाचे करुण हृदयस्पर्णी वर्णन केल्या नंतर श्रीरामांनी तो वनवास किती रमणीय वाटत होता हे पूढील श्लोकांवरुण लक्षात येते.

"नराज्यभ्रंशनंभद्रेनसु-हद्भिर्विनाभवः।
मनो मे बाधते दृष्टवा रमणीयमिमं गिरिम्॥८

हा रमणीय पर्वत पाहून हे कल्याणी मला ना राज्यापासून भ्रष्ट होण्याचे दु:ख बाधते ना मित्रां पासून दूर होण्याचे.

या पर्वतावरील उंचउंच शिखरे विविध पक्षीगण अत्यंत मनोरम असे फुला फळांनी युक्त घनदाट सावली देणारे वृक्ष कोठे कोठे पाझरणारे मदोनमत्त हत्ती प्रमाणे भासणारे पाण्याचे झरे, पुष्कळ नानविध फुलांचा सुगंध वाहून नेणारा गुहेतील गारवारा कोणाचे हृदय आकर्षित करणार नाही. म्हणून श्रीराम मह्मतात "

"यदीहशरदोऽनेकास्त्वयासार्धमनिन्दिते।

लक्ष्मणेनचवत्स्यामि नमां शोकः प्रधर्षति॥"[9]

जरी हे अनंददायी नी (सीते) तुझ्या समवेत व लक्ष्मणा सोबत अनेक शरद ऋतु मी येथे (चित्रकुट पर्वतावर) राहिलो तरी मला दुःख होणार नाही

अशा प्रकारे निसर्गाच्या सानिध्यात राजपाटाचे ही सुख शुन्य वाटते. हे सांगणारे वर्णन मानवी जीवनातील पर्यावरणाचे महत्व सुचविते. रामायणामध्ये असे अनेक वर्णने आणि प्रसंग आढळतात.

संस्कृत साहित्य व पर्यावरण हे एकमेकांवर किती अवलबुंन आहेत हे पंडित जगन्नाथ विरचित 'भामिनी विलास या ग्रंथावरुन लक्षात येते कारण या ग्रंथात संपूर्ण पर्यावरणातील प्राणी, फुले, निसर्ग यांच्या आधारेच अन्योक्ति रचल्या आहेत जसे

यातेमय्यचिरान्निदाघमिहिरज्वालाशतैः शुष्कतां

गन्ताकम्प्रतिपान्थसन्ततिरसौसन्ताप मालाकुला ?

एवंयस्यनिरन्तराधिपटललैर्नित्यं वपुः क्षीयते

धन्यश्जीवनमस्य मार्गसरसो धिगवारिधीनाश्जनुः॥[१०]

प्रस्तुत श्लोकातून ग्रीष्म काळात सुकून जाणारा तलाव आता गर्मीने व्याकुळ वाटसरू कोठे जाणार हे जाणून चिंतीत होतो आशा सज्जन प्रकृतीला धन्य संबोधले आहे आणि समुद्राच्या जन्माचा धिक्कार केला आहे.

एकंदरीत अशी वर्णने पाहता पर्यावरणा शिवाय मानव जगूच शकत नाही हे मात्र निश्चित कळते "आयुर्वेद सारख्या ग्रंथातून तर सर्वच जीव हे पर्यावरणीय घटकांवर अवलंबून जगतात है सिद्धच होते. तसेच ज्योतीषशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवशास्त्र, रसायनशास्त्रा या सर्वच ज्ञान शाखांमधून पर्यावरणीय बाबींचाच अभ्यास आढळतो जो जीव रक्षणाय आणि 'जीव संवर्धनाय अत्यंत उपयुक्त ठरतो

"वायुरेवमहाभूतं वदन्तु निखिलाजानाः।
आयुरेवैष भूतान्तमितिमन्यामहे वयम्।।[११]

वायुची गणना सर्व लोकांनी जरी महाभूत म्हणून केली असली तरी आम्ही त्या वायुला सर्वांचा प्राण म्हणूनच संबोधु तसेच

"पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेवचतन्मयम्।
नहि तोयाद्विना वृत्तिः स्वस्थस्य व्याधितस्य वा।।

'जल' हे प्राण्यांचे जीवन आहे, सर्व विश्वच जलमय आहे रोगी असो अथवा निरोगी कोणी ही पाण्या शिवाय जिवंत राहू शकत नाही. अशा प्रकारचे पर्यावरणीय घटकांचे महत्व विशद करणारे अनेक दाखले आपणास संस्कृत साहित्यात आढळतात; जे जीव सृष्टी करिता पर्यावरण किती महत्वपूर्ण आहे हेच जणु सांगतात.

संस्कृत ललित साहित्य, गद्य, पद्य, चन्पू, विदग्ध, आधुनिक संस्कृत साहित्य जवळजवळ सर्वच संस्कृत साहित्य प्रकारांमध्ये पर्यावरणीय निसर्गवर्णने आढळतात. पौराणिक साहित्यातून तर अत्यंत अद्‌भूत अशी वर्णने आढळतात कालिदासांनी तत्कालीन पर्यावरणाची पर्यायाने नैसर्गीक सौंदर्याची आपल्या साहित्यातुन मुक्त हस्ते उधळण केलेली दिसते त्यांनी आपल्या"

"अभिज्ञान शाकुन्तलम्' या नाटकात शकुन्तला या नायिकेला निसर्ग कन्या या उपमेने अलंकृत केले आहे.

"पातुं न प्रथमंव्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आदये व: कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वेरअनुज्ञायताम्।।[१२]

जी तुम्हाला (वृक्षानां) आधि पाणी दिल्या शिवाय स्वता: पाणीही पित नाही, जी दागिण्यांची आवड असतानाही तुमच्या वरील स्नेहामुळे (तुमची) पालवी घेत नाही; तुमचे फुलांनी बहरणे जिच्यासाठी आजही उत्सवा सम आहे (अशी) ती हि शकुंतला पतिगृही जात आहे तीला अनुमती दया, अशी वर्णने मानव आणि निसर्ग यातील घनिष्ठता दर्शिवतात.

आजच्या काळात ही या घनिष्ठतेची नितांत आवश्यकता आहे. कारण निसर्गा विषयी प्रेम, जागरुकता आणि त्याच्या संवर्धनाची गरज लोकांना कळणे खूप आवश्यक आहे आणि त्या करिता संस्कृत साहित्य हे अत्यंत उपयुक्त ठरते. आज पर्यावरणीय समस्या या केवळ भारता पुरत्याच मर्यादित नसून त्या जागतीक पातळीवर फोफावलेल्या दिसतात. त्यामुळे शुद्ध पाणी, शुद्ध हवा, घनदाट वनराशी यांच्या योगे मिळणारे आरोग्य पुर्ण जीवन याचे दर्शन संस्कृत साहित्यातुन घडते. त्यामुळे साहित्या द्वारे पर्यावरण विषयक जागृति हा ही तितकाच महत्त्वाचा विषय ठरतो. त्या योगे संस्कृत साहित्य हे अत्यंत पर्यावरण पूरक आणि पर्यावरण संवर्धनास अत्यंत उपयुक्त आहे हे वरील विवेचना वरुण स्पष्ट होते. 'जल संवर्धनम्' ' वृक्षो रक्षति रक्षत: अशी घोष वाक्यही संस्कृत साहित्याचीच देण आहे. त्यामुळे येथे संस्कृत साहित्य व पर्यावरण यांचा घनिष्ठ संबंध याचे विवेचन करता येते.

संदर्भ सुची

1) सिन्ह विजय पाल संस्कृत साहित्य का इतिहास शिक्षा भारती दिल्ली १५
2) Jagduniya.com
3) डॉ.कुमारी विमला कर्नाटक संख्याकारिका चौखम्बा पब्लिशर्स वाराणसी ६१
4) शालीग्रामशास्त्री साहित्य दर्पण: मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली २२५
5) महाराष्ट्र मा. व उ. मा शिक्षण मंडळ पुणे संस्कृत वैजयन्ती मा. कृष्ण कुमार पाटील सचिव ७३, ७४
6) महाराष्ट्र मा.व उ.मा शिक्षण मंडळ पुणे संस्कृत वैजयन्ती ४५, ४६
7) श्री राधेशाम मिश्र भामिनी विलास चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी २१
8) श्री भास्कर गोविंद घाणेकर वैद्यकीय सुभाषित साहित्यम चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी ३५, ०५
9) प्रा. राम शेवाळकर अभिज्ञान शाकुंतल श्री मनोहर जोशी प्रसाद प्रकाशन सदाशिव पेठ २४८

***

वैदिक वाङ्मय और पर्यावरण संस्कृति

प्रा. डॉ. शंकर धारबा घाडगे

संस्कृत विभाग, पुण्यश्लोक अहिल्यादेवी होळकर महाविद्याल,
राणीसावरगाव.

प्रस्ताविक :

आज पर्यावरण शब्द जिस अर्थमें प्रयुक्त हो रहा है, अब से तीन-चार दशक पूर्व उसका ऐसा कोई पारिभाषिक अर्थ नहीं था। प्राचीन कोशों में और यहांतक किसं स्कृत हिंदी कोशोंमें भी यह शब्द उपलब्ध नहीं होता। उसके पीछे मूल कारण यही है कि यह शब्द उस समय तक किसी पारिभाषिक रूपसे प्रचलित नहीं हो पाया था। अत एव प्राचीन कोशकारोंने इस का कोई विशेष अर्थ प्रस्तुत नहीं किया। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति, परि-उपसर्ग के साथ आवरण शब्द की संधिसे होती है। पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव जगत को परावृत्त करती हैं तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं। हमारे चारों ओर जो विराट प्राकृतिक परिवेश व्याप्त है, उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं। परस्परावलंबी संबंध का नाम पर्यावरण है। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं परिस्थितियां एवं शक्तियां विद्यमान हैं, वे सब हमारे क्रिया कलापोंको प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरेको हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा व्यक्ति, गांव, नगर, प्रदेश, महाद्वीप, विश्व अथवा संपूर्ण सौर मंडल या ब्रह्मांड हो सकता है। इसी लिए वेदकाली नमनीषि योंनेद्यु लोक से लेकर व्यक्ति तक, समस्त परिवेश के लिए शांतिकी प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है, 'द्योः शांतिरंतरिक्षं...' (शुक्ल यजुर्वेद, 36/17)। इस लिए वैदिक कालसे आजतक चिंतकों और मनीषियों द्वारा समय-समयपर पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता

को अभिव्यक्त कर मानव –जातिको सचेष्ट करने के प्रति अपने उत्तरदायित्वका निर्वाह किया गया है।

इस प्रकार द्युलोकसे लेकर पृथ्वीके सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्थामें रहें, अदृश्य आकाश (द्युलोक), नक्षत्र युक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक-जल, औषधियां, वनस्पतियां, संपूर्ण संसाधन (देव) एवं ज्ञान-संतुलनकी अवस्था में रहें, तभी व्यक्ति और विश्व, शांत एवं संतुलन में रह सकता है। प्रकृतिने हमें जो कुछ भी परिलक्षित होता है, सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रचना करते हैं। जैसे- जल, वायु, मृदा, पादप और प्राणी आदि। अर्थात्जीवोंकी अनुक्रिया ओंको प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक और जीवीय परिस्थितियों का योग पर्यावरण है। इसलिए विद्वानों का मत है कि प्रकृतिही मानव का पर्यावरण है और यही उसके संसाधनोंका भंडार है। वैदिक ऋषियोंने उन समस्त उपकारक तत्वोंको देव कहकर उनके महत्वको प्रतिपादित तो किया ही है, साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्वको भी भली-भांति स्वीकार किया है। इन देवताओं के लिए मनुष्यका जीवन ऋणी हो गया और शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्यको पितृ ऋण और ऋषि ऋण के साथ –साथ देव ऋण सेभी उन्मुक्त होने की ओर संकेत किया है। वह अपने कर्तव्य में देव ऋणसे मुक्त होने के लिए भी कर्तव्य करें। ऋषियोंने उसके लिए यह मर्यादा स्थापित की है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें – सूर्य, वायु, वरुण (जल) एवं अग्नि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवोंसे कल्याण की कामना स्पष्ट रूपसे उल्लिखित है।

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति :

आज पर्यावरण शब्द जिस अर्थमें प्रयुक्त हो रहा है, अबसे तीन-चार दशक पूर्व उसका ऐसा कोई पारिभाषिक अर्थ नहीं था। प्राचीन कोशों में और यहांतक कि संस्कृत हिंदी कोशोंमें भी यह शब्द

उपलब्ध नहीं होता। उसके पीछे मूल कारण यही है कि यह शब्द उस समय तक किसी पारिभाषिक रूपसे प्रचलित नहीं हो पाया था। अत एव प्राचीन कोशकारोंने इसका कोई विशेष अर्थ प्रस्तुत नहीं किया। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति, परि-उपसर्ग के साथ आवरण शब्दकी संधिसे होती है। इसके साथ ही आङ्पूर्वकवरण शब्द का प्रयोग भी संस्कृत शब्दार्थ – कौस्तुभ ग्रंथ में हमें प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है, 'ढकना, छिपाना, घेरना, ढक्कन, पर्दा, घेरा, चारदीवारी, वस्त्र, कपड़ा और ढाल (वही, पृ. 200)। इसी ग्रंथमें संस्कृत के उपसर्ग 'परि' का अर्थ – सर्वतो भाव, अच्छी तरह, चारों ओर तथा आच्छादन आदिके रूप में मिलता है और 'आङ्' भी संस्कृत का एक उपसर्ग है, जिसका अर्थ, 'समीप, सम्मुख और चारों ओर से होता है (वही, वृ. 170)। वरण शब्द संस्कृत के 'वृ' धातुसे बना है, जिसका अर्थ, 'छिपना, चुनना, ढकना, लपेटना, घेरना, बचाना आदि है (वही, पृ. 1056)। इसी प्रकार पर्यावरण –परि+आवरण से बने शब्द का अर्थ, 'चारों ओरसे ढंकना, चारों ओर से घेरना या चारों ओरका घेरा' होगा। अत एव वैज्ञानिक कोशकारोंने इसका अर्थ, 'पास पड़ोसकी परिस्थितियां और उनका प्रभाव' के रूपमें माना है। सर्वप्रथम डॉ. रघुवीरने तकनीकी शब्द कोष निर्माण के समय 'इन्वायरमेंट' (फ्रेंच भौतिक शब्द) के लिए 'पर्यावरण' शब्दका प्रयोग किया है। वे ही इसके प्रथम 'शब्द प्रयोक्ता है (कंप्रिहेंसिव इंग्लिश- हिंदी डिक्शनरी, डॉ. रघुवीर, पृ. 589)। वास्तव में पर्यावरण या इन्वायरमेंट शब्द अत्यधिक प्राचीन शब्द नहीं है। जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नेस्टहीकल द्वारा 'इकॉलाजी' शब्द का प्रयोग सन् 1869 में किया गया, जो ग्रीक भाषा के ओइकोस (गृह या वासस्थान) शब्दसे उद्धृत है। यही शब्द पारिस्थितिकी के अंग्रेजी पर्याय के रूपमें इन्वायरमेंट शब्द से प्रचलित हुआ है। (पर्यावरण तथा प्रदूषण, अरुण रघुवंशी, पृष्ठ 41)। इन्वायरमेंट शब्दका प्रयोग, ऐसी क्रिया जो घेरने के भावको सूचित

करे, के संदर्भ में किया जाता है। विभिन्न कोशों में इसके विभिन्न अर्थ दिए गए हैं। जैसे - वातावरण, उपाधि, परिसर, परिस्थिति, प्रभाव, प्रतिवेश, परिवर्त, तथा वायुमंडल, वातावरण और परिवेश, अड़ोस-पड़ोस, इर्द-गिर्द, आस-पास की वस्तुएं एवं पर्यावरण आदि।

आधुनिक चिंतन में पर्यावरण के दो भेदों का ही वर्णन मिलता है। वे हैं -

1. भौतिक या प्राकृतिक पर्यावरण –इसके अंतर्गत वे तत्व सम्मिलित होते हैं, जो जैवमंडलका निर्माण करते हैं।
2. सांस्कृतिक या मानवकत पर्यावरण इसमें आर्थिक क्रियाएं, धर्म अधिवास, आवासीय दशाएं एवं राजनीतिक परिस्थितियां आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह तथ्य वैदिक और आधुनिक चिंतन से स्वयं स्पष्ट होता है कि प्राणि-जगत्को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय तत्व 'देव' केवल पार्थिव ही नहीं है, अपितु उनका स्थान अंतरिक्ष और द्युलोक भी है। वैदिक ऋषियों ने उन सभी से प्राणियोंकी मंगल – कामना एवं सुरक्षाचाही है।

वैदिक ऋषियोंने ही सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिंतन - मनन :

पर्यावरण को जानने के लिए अब यह जानना भी आवश्यक है कि पर्यावरण का निर्माण करने वाले समस्त तत्वों की सृष्टि किस क्रम में और किस प्रकार हुई और उसके कारक तत्व कौनसे हैं, तभी पर्यावरण के समस्त रहस्यों से आवरण दूर किया जा सकता है। वैदिक ऋषियों ने ही सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिंतन –मनन करते हुए, सृष्टि को प्रारंभिक अवस्था में जिस रूप में देखा, उसका वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं 'नासदासी त्रोसदासीत्तदानी...' (ऋग्वेद, 10/129, 1-7) में उपलब्ध होता है। जहां ऋषि कहते हैं कि सृष्टिके आरंभ में नसत्थान असत्फिर ब्राह्मण ग्रंथों (पृ. 158) में भी पुनः शंका उठाई गई कि कौन जानता है यह सब? और कौन उसका वर्णन ही

कर सकता है? किंतु इसके समाधान के लिए ऋग्वेद संहिता में मंत्र है, 'हिरण्यगर्भः समवर्त ताग्रे...' (ऋग्वेद, 10/121/1) जिसमें सृष्टि के विकास-क्रम को बताया गया है कि सर्वप्रथम जीवोंका स्वामी भूतहिरण्य गर्भ अस्तित्वमें आया और उसीसे सृष्टिका अविच्छिन्न विकास हुआ आदि-आदि। विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपोंमें विद्यमान रहती है- कण, प्रतिकण एवं विकिरण। चाहे वह सृष्टि उत्पत्ति का समय हो या अन्य कोई समय। वैदिक सिद्धांत के अनुसार प्रकृति में मूल तीन वर्ग, 'त्रयःकृण्वति भुवनस्यरेत' (ऋग्वेद, 7/33/7) विद्यमान हैं। ये हैं वरुण, मित्र और अर्यमा। इनकी संयुक्त सत्ता को अदिति कहा गया है, जो अनादि एवं अखंड सत्ता है। व्यक्तिगत रूपसे ये आदित्य कहला ते हैं। ये अनादि शाश्वत सत्ताके अंगभूत हैं। अर्यमाउदासीन कण है, जो विज्ञानकी विकिरण के फोटांस के अनुरूप है। वरुण और मित्र प्रकृतिका द्रव्य भागबनाते हैं तथा विज्ञान के कण-प्रतिकण का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा वे विपरीत आवेश (चार्ज वहन करते हैं। वैदिक परिकल्पना नुसार सृष्टि कालसे दृश्य जगत तक भौतिक पदार्थ पांच अवस्थाओं में निष्क्रमण करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिमें महा-अग्निकांड (बिगबैंग) के बाद की अवस्थाएं क्रमशः इस प्रकार हैं-

1. आपः (क्रियाशील) अवस्था- क्वांटमयाक्वार्कसूप (शपतथब्राह्मण, 1/1/1)
2. बृहतीआपः –प्लाज्मा अवस्था (ऋग्वेद, 10/12/7)
3. अपानपात – नाभिक अवस्था या कॉस्मिकमैटर (ऋग्वेद, 1/35/2)
4. अर्धगर्भ-----: -परमाणु अवस्था (ऋग्वेद, 1/164/36)
5. पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) का दृश्य जगत्।

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों में –तैत्तिरीय ब्राह्मण (2, 8, 9, 6 तथा 1, 1, 3, 1), गोपथ ब्राह्मण (1, 1, 1, 2), साम विधान ब्राह्मण 1/1), जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मण (7, 1, 1), शतपथ ब्राह्मण (6, 1, 1, 13, 19, 2, 2, 3, 28), जैमिनीय ब्राह्मण (1, 68 तथा 2, 146, ऐतरेय ब्राह्मण (5, 5, 7), ताड्य ब्राह्मण (4,1, 1), तैत्तिरीय संहिता (4, 1, 8, 3), ऐतरेये उपनिषद् (1, 1), तैत्तिरीय उपनिषद् (2, 7, 10) आदि में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है, जो वेदों की विषद्व्याख्या रूप हैं और उन अर्थोंका पूरक भी है। इसी क्रम में दार्शनिकों एवं वेदांतने भी उसी प्रकार चिंतन किया है। पौराणिक दृष्टि तथा मनुका सृष्टि सिद्धांत व आयुर्वेद का चिंतन भी वैदिक विज्ञान का समर्थन करता हुआ ही प्रतीत होता है।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति और जगत्का विकास ही पर्यावरण प्रादुर्भाव है। सृष्टिका जो प्रयोजन है वही पर्यावरण का भी है। जीवन और पर्यावरण का अन्योन्य संबंध है। इसी लिए आदिकालसे मानव पर्यावरण के प्रति जागरूक रहा है, ताकि मानव दीर्घायुष्व, सुस्वास्थ्य, जीवन - शक्ति, पशु, कीर्ति, धन एवं विज्ञान को उपलब्ध हो सके। यही कामना अथर्ववेदका ऋषि, 'आयुःप्राणंप्रजांपशुं' (अथर्ववेद, 19, 71, 1) व 'शतजीव शरदो' ...अथर्ववेद, 3, 11, 4) करता है और ऋग्वेद में ऋषि, 'शतांजीवंतुशरदः...' (ऋग्वेद 10/18/4) तथा यजुर्वेद में ऋषि, 'शतिमिन्नु शरदोअंति...' (यजुर्वेद, 25/22) तथा वह ऋषिका आशीर्वाद पाता है कि हे मनुष्य! बढ़ता हुआ तू सौ शरद ऋतु और सौ बसंत तक जीवित रहे। इंद्र (विद्युत), अग्नि, सविता (सूर्य), बृहस्पति (संकल्प शक्ति) और हवन (यज्ञ) तुझे सौ वर्षतक आयुष्य प्रदान करें (अथर्ववेद)। इतना ही नहीं कि किसीभी तरह सौ वर्ष जिएं, प्रत्युत, आरोग्यता और बलके साथ जिएं। हम सौ वर्ष पर्यंत, ज्ञान शक्तिका विकास करें, सौ वर्षतक जीवनको ज्ञानके अनुकूल विकसित करें, सौ वर्षतक वेदको सुनें और

प्रवचन करें और आयुभर किसी के पराधीन न रहें (ऋग्वेद, 7/66/16)। संतान और धन के साथ अभ्युदय को हम प्राप्त होते हुए बाहर से शुद्ध, अंदर से पवित्र तथा निरंतर यज्ञ करने वाले हों। नृत्य, हास्य, सरलता और कल्याणमय श्रेष्ठ मार्ग के आचरण से आयु बढ़ती है (ऋग्वेद 10/18/2 तथा 10/18/3)। दीर्घायु प्राप्तिके लिए सर्वप्रथम अपने मनमें श्रेष्ठ सद्गुण बढ़ाते हुए राष्ट्रीयता तथा क्षात्रतेज अपने अंदर बढ़ाना चाहिए। प्राण शक्तिके साथ आत्मिक बल धारण करने वाले मृत्यु के वश में नहीं जाते (अथर्ववेद 10/3/12 तथा 19/27/8)। इसलिए वेदकी उपर्युक्त शाश्वत्भावना के अनुरूप ही पर्यावरण शुद्धि एवं सुस्वास्थ्य मानव की एक बड़ी आवश्यकता है।

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है। इसपर आचार्य सायण एवं नैरुक्त चिंतन है कि अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति योग है एवं प्राप्ति का संरक्षण क्षेम है (ऋग्वेद, 5/51/11)। अत एव सहज-सुलभ प्राकृतिक पदार्थोंका सुरक्षित रहना स्वस्ति है। इस प्रकार पर्यावरण को सुरक्षित रखने की उदात्त भावनाएं हमें अनेक स्थलों पर देखने को मिलती हैं (ऋग्वेद, 5/51/11, 5/51/13, 5/51/14 तथा 10/7/1)। पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थोंका परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांतिकी भावनाएं अनेक स्थलों पर हमें उपलब्ध होती हैं। जैसे-पृथ्वी हमारे लिए कंटकर हित और उत्तम बसने योग्य हो (ऋग्वेद, 7/35/3 तथा यजुर्वेद 36/13)। हमारे दर्शन के लिए अंतरिक्ष शांति प्रद हो (ऋग्वेद,10/35/5)। वह आकाश जिस में बहुत पदार्थ रखे जाते हैं, हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 7/35/2)। सूर्य, अपने विस्तीर्ण तेज के साथ हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 10/35/8)। सूर्य, हमारे लिए सुखकारी तपे (यजुर्वेद, 36/10), चंद्रमा हम लोगों के लिए सुख रूप हो (ऋग्वेद, 7/35/7)। नदी, समुद्र और जल हमारे लिए सुख प्रद हो (ऋग्वेद, 7/35/8)। पीनेका जल और

वर्षाका जल हमारे लिए कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/12)। जलधाराएं तुम्हारे लिए अमृत वस्तुएं बरसाएं (अथर्ववेद, 8/6/5)। ज्योतिर्मय अग्नि हम लोगोंके लिए सुख रूप हो (ऋग्वेद, 7/35/4)। अग्नि दुःखदायक रोगादि को और अनावृष्टि आदि दुःखोंका हनन करती है (सामवेद मंत्र-4)।

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान्योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने बृहत्चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व एवं महात्म्यको स्वीकार करते हुए कहा गया है कि दसकुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। इसी प्रकार अन्य पर्यावरणीय घटकों के लिए शुभकामनाएं की गई हैं। जैसे- शीघ्र चलने वाली वायु हम लोगों के लिए सब ओरसे सुख रूप होकर बहे (ऋग्वेद, 7/35/4)। पवन हमारे लिए सुखकारी चले (यजुर्वेद, 36/10)। पूर्व आदिचारों दिशा एंव विदिशाएं हमारे लिए सुख रूप हों (ऋग्वेद, 7/35/8)। समस्त दिशाएं हमें मित्रवत सुख दें (अथर्ववेद, 19/15/16)। विशेष दीप्तिवाली उष्माएं हमारा कल्याण करें (ऋग्वेद 7/35/10)। दिन और रात्रि हमारे लिए सुखकारी हो (यजुर्वेद 36/11)। हम दिन और रात में अभय रहें (अथर्ववेद, 19/15/16)। मेघ हम प्रजाजनों के लिए शांति प्रद हों (ऋग्वेद, 7/35/10)। बिजली और गरज के साथ शब्द करते हुए पर्जन्य (मेघ) देवकी वर्षा कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/10), आज वैज्ञानिकोंने भी मौसम में बदलाव को नियंत्रित करने में बादलों की भूमिका को स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया है (टेक्सासए एंड एम यू निवर्सिटी के प्रोफेसर शाइमानसीरी, नवभारत, 4 जनवरी, 2011 के रायपुर संस्करण के पृष्ठ 5 पर)। उन्होंने शोध कर कहा कि मध्यस्तर के बादल छोटी बूंदों और बर्फ के कणोंका निर्माण करते हैं। उन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में नई सेटेलाइट टेक्नोलॉजी को वैज्ञानिक रहस्य उजागर करने में बहुतकारगर एवं सहयोगी

बताया। नासाने इस अध्ययन के लिए प्रो. शाइमी को न केवल सम्मानित किया, अपितु उन्हें भू-व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए 3 लाख 24 हजार डॉलर का तीन वर्षके लिए अनुदान भी दिया।

इसी तारतम्य में वैदिक ऋषियों ने पर्वतों, वृक्षों, वनस्पतियों एवं पशुओं को प्रजाजनों के लिए सुख स्वरूप होने की कामना की है। उदाहरणार्थ – हमारी शांतिके लिए पर्वत निश्चल हों (ऋग्वेद 7/35/3 एवं 8), वनों के वृक्ष हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/5), हमारे लिए औषधियां शांतिकारक हों (यजुर्वेद, 36/17), घोड़े और गायें हम लोगों के लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/12)। इस प्रकार पर्यावरण के हर घट के शांत एवं सौम्य रहने पर ही विश्व-शांतिका स्वप्न साकार होने की कामना वैदिक ऋषियों ने की है। उन्होंने एक संपूर्ण वैचारिक जगत्के साथ-साथ सांस्कृतिक जगत्पर भी अत्यंत गहराई से विचार कर पर्यावरण के दायरे को विराटता प्रदान की है और प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा की कामना के साथ-साथ मार्धुय की उदात्त भावना तथा अभय की प्रार्थना भी की है। जहां – जहां हमारे लिए जैसी परिस्थिति हों, वहां-वहां हमें हर प्रकारसे अभय प्राप्त हो तथा प्रजा एवं पशुओं से भी हमें अभय मिले (यजुर्वेद, 37/12)। संसार में वायु मधुर होकर चले, नदियां मधुर होकर बहें, औषधियां मधुर उगें। रात मधुर हो प्रभात भी। पृथ्वी, द्यौ, वनस्पतियां, सूर्य और गौवें मधुर हों (यजुर्वेद, 13/27, 29)। हमें अंतरिक्ष अभय करे, द्यावा, पृथ्वी, नीचे-ऊपर, आगे-पीछे, मित्र-शत्रु, ज्ञात-अज्ञात, रातदिन और समस्त दिशा ओं से अभय की प्राप्ति हो (अथर्ववेद, 19/15/5/6)।

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षोंके महान्योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने बृहत्चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व एवं महात्म्यको स्वीकार करते हुए कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक

तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है-

दशकूपसमावापी, दशवापीसमोहद्रः।
दशह्रदसमःपुत्रो, दशपुत्रोसमोद्रुमः।

प्राकृतिक शक्तियों में देवी स्वरूपकी अवधारणा मात्र यह इंगित करती है कि हम इनकी रक्षा करें, इनसे अनुराग रखें और स्वस्थ, संतुलित जीवन यापन करते हुए पर्यावरण की यथा शक्ति रक्षा करें। उक्त बिंदुओं को यदि नैतिकता – अनैतिकता की सीमा-रेखा में नभीबांधें तोभी ये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के संवाहक प्रतीत होते हैं। भारतीय चिंतन-धाराकी यही प्रमुख विशेषता है, जो इस प्रदूषण – अभिशप्तसदी में हमें अपने अतीत की बार-बार याद दिलाती है।

पर्यावरण प्रदूषण :

पर्यावरण प्रदूषण की आज अंतरराष्ट्रीय स्तरपर चर्चा जोर-शोरसे होने लगी है, लेकिन इस का यह अर्थ कदापि नहीं कि यह शब्द अंतरराष्ट्रीय स्तरपर अचानक ही दो-चार दशक पूर्व प्रकट हो गया है। इसकी अवधारणा भलेही नई लगती हो, किंतु यह तो प्रकृतिके प्रारंभसे ही विद्यमान रहा है, क्यों किमान व द्वारा श्वास और मल-मूत्र तथा पसीना त्यागने के साथ-ही-साथ प्रदूषण आरंभ हो गया। महर्षियास्कने अपने निरुक्त में वस्तुया भावके जो छह विकार गिनाए हैं, उनमें पर्यावरण के संबंधमें अस्ति या सत्ता शब्द चिंतनीय हैं। इसकी व्याख्या में वे कहते हैं कि कोई वस्तु तभी अपनी सत्ता बनाए रख सकती है।, जब वह स्वयंको धारण करने में समर्थ हो। जब उसमें बाहरी हस्तक्षेप अधिक होता है अथवा उसकी नैसर्गिक संरचना विकृत होती है तो उसकी आत्मधारणा शक्ति नष्ट हो जाती है, यही उसका प्रदूषण है। वस्तुके निर्माण का जो अनुपात है, वह स्थित रहना चाहिए। अनुपात भंग हुआ और वस्तुका स्वास्थ्य नष्ट होगया। वस्तुके स्वास्थ्यका विनष्ट होना ही प्रदूषण है।

प्रकृतिमें एकका उच्छिष्ट दूसरे के लिए उपभोग्य बन जाता है। प्रकृतिकी संतुलन प्रक्रिया सृष्टि के आदिकाल से अनवरत एवं अविछिन्न रूपसे चली आ रही है। यदि किसी कारण से इस में कभी कोई व्यवधान पड़ता है तो पारिवेशिक संतुलन में प्रतिकूल स्थितियां दृष्टिगत होने लगती हैं। वस्तुतः प्रकृति में उत्पन्न होने वाली यही प्रतिकूलता प्रदूषण है। प्रदूषण के भावको दर्शाने वाले कुछ शब्द हमें प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं। जैसे- 'रपः' शब्द वैदिक वाङ्मय में कुछ स्थलोंपर आया है, जिसे शारीरिक दोष या बुराई के अर्थ में माना गया है। ऋग्वेद में प्राचीन चिकित्सक अश्विनी कुमारों से प्रार्थना की गई है कि तुम हमारे दोषों को अच्छी प्रकार शोधन करो (ऋग्वेद, 1/34/11)। इसी प्रकार रुद्र देवको देवकृत पापका अपहरण करने वाला तथा किए हुए अपराध को क्षमा करने वाला या विनष्ट करने वाला बताया गया है (ऋग्वेद, 2/33/7 तथा 10/97/10)। औषधियों को भी शरीर के प्रदूषण को दूर करने वाली बताया गया है और अन्यत्र वायुसे व्याधि दूर कर सूख प्रदान करने और दोषों को हटाने की कामना की गई है (ऋग्वेद, 10/137/10)।

इसी प्रकार 'विष' शब्दका प्रयोग शारीरिक व प्राकृतिक प्रदूषण के रूपमें किया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मंडलके 191 वें सूक्त के मंत्रों में विष शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। ऋषि अगस्त्यने विषकी आशंका से युक्त होकर उसके निवारण के लिए इस सूक्त का प्रयोग किया है। इसके देवता जल, तृण और सूर्य हैं तथा इसमें मधु विद्याका वर्णन है। आचार्य सायणने इसे विष रहित करने वाली मधुविद्या कहा है कि यह विष भावको दूर कर अमृत बनाती है। उन्होंने इसके अल्प और महाविष- दो प्रकार लिखे हैं। इकाई अथवा सामूहिक रूपसे इसका प्रयोग किया जा सकता है। विषके प्रभाव से खाद्य, पेय, भक्ष्य सामग्री तथा जल एवं वायु आदि विषाक्त हो जाते हैं। इस प्रकार सभी विषक्षोभक और श्वासरोधक होकर प्राणोंका नाश करते हैं। प्राचीन युग के विष चिकित्सक अपने राजा की सेना एवं जनपद की रक्षा करने में समर्थ होते थे।

एक और शब्द 'पाप' भी प्रदूषण के पर्याय स्वरूप अथर्व वेद में आया है (अथर्ववेद, 10/1/10) । उपनिषदों में प्रदूषण का पर्याय 'पाप' शब्द आया है (महानारायणोपनिषद्, 4/6)। यहां मिट्टीसे दोष हरने की प्रार्थना है। अन्यत्र तिलको भी पाप नाशक माना है। कहीं-कहीं 'मल' शब्द भी प्रदूषक वाचक माना गया है (अथर्ववेद, 6/115/3) इसमें स्नान करनेसे जैसे दैहिक मलदूर होता है, वैसे ही पवित्र आचरण व व्यवहारसे सभी लोग प्रदूषण से बचने के लिए प्रयत्नशील हों। इसी प्रकार ऋग्वेद में पापों और हिंसकों के आने के पूर्वही उनसे बचने के लिए प्रयत्न करने को कहा गया है (ऋग्वेद, 8/44/30 तथा 10/113/10)। इसके लिए यहां 'दुरित' शब्द का प्रयोग हुआ है। कुछ स्थलों पर 'अहः' शब्द भी पर्यावरण के लिए प्रयुक्त हुआ है (ऋग्वेद, 1/106/10)। इसमें यह प्रार्थना है कि हमसे सभी दोषों को दूर करदें। अथर्ववेद 4/27/1 से 7/11/6 तथा 6/8 एवं 10/21) के अनेक मंत्रों में मरुत देवोंसे पाप एवं दोषों को छुड़ाने की बार-बार प्रार्थना की गई है। वेद में एक और शब्द 'एनः' उन्हीं अर्थोंमें आया है, जिनमें अहं: या अध शब्द आए हैं। यजुर्वेदके कई मंत्रों में – अग्नि, वायु और सूर्य द्वारा दिन-रात, स्वप्न अथवा जागते हुए पाप अथवा प्रदूषण से छूटने की कामना की गई है (यजुर्वेद, 20/14 से 16)।

प्रदूषण निवारण के लिए ऋग्वेद (मंडल 7, सूक्त 50) में विभिन्न पदार्थोंसे विष आदि हरण की कामनाएं की गई हैं। आचार्य सायणने 'विषादि हरणे विनियोग' लिखकर ही इस सूक्त का भाष्य किया है। प्रथम मंत्र में मित्र वरुण देवताओं से प्रार्थना की गई है कि विशेष रूपसे बढ़े हुए विषसे बचाते हुए हमारे पालनाकरें। 'अजका' नामक रोग की तरह यह अनिष्टकारी विष समाप्त हो, जिससे हम लोग प्रदूषण के पापसे पीड़ित नहों। दूसरे मंत्र में कहा गया है कि वृक्षोंकी गांठ में अथवा शरीर के विभिन्न भागों में जो विष है, उसे

प्रदीप्त अग्नि हमसे दूर करे। तीसरे मंत्र में, जो प्राण हरनेवाला पदार्थ विषसे मरआदि वृक्षों में तथा जो नदियों के प्रवाह में होता है और जो विष, यव आदि औषधियों से उत्पन्न होता है, उस विषको विद्वान्निरंतर दूरकरें, ताकि उस पापाचरण प्रदूषणसे उत्पन्न होने वाले रोग हमें प्राप्त नहों।

ऋग्वेद (7/104/9) में चेतावनी दी गई है कि जो कल्याणकारक पदार्थों अथवा वचनों को अपनी क्रियाओं से दूषित करते हैं, वे राक्षस दुःख सागरमें गोते खाते हैं। इस प्रकार भौतिक एवं वैचारिक प्रदूषण के प्रतिभी ऋषियों ने अपनी चिंता प्रकट की है। ऋग्वेद (10/137/5) के इस मंत्र में, देवगणों से प्रदूषण आदि दोषों से हमारे शरीर की रक्षा करने की कामना की गई है। इस लोक में सारी दिव्य शक्तियां सबकी रक्षा करें, मरुतों का समूह सबकी रक्षा करे, समस्त उत्पन्न पदार्थ हमारी रक्षा करें, जिससे हमारे शरीर आदि निर्दोष रहें। इसी प्रकार अथर्ववेद (8/2/19) में भी प्रदूषण मुक्ति की कामना उपलब्ध है, 'हे मनुष्य! जो तू खेती का उपजा धान्य खाता है और जो तू दूध व जल पीता है, चाहे वह नया हो या पुराना, वह सब अन्नादि तेरे लिए विष रहित हों।'

प्रदूषण सृष्टि के लिए विनाशकारी :

सृष्टि की विनाश प्रक्रिया पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि विनाश का मूल कारण प्रदूषण ही है, क्यों कि व्यक्त पदार्थों के गुणोंमें विकार उत्पन्न होने पर, उनके विनष्ट होने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इसे ही वेदों में प्रतिसर्ग अथवा सर्ग कहा गया है। उक्त विकार को ही आधुनिक भाषामें प्रदूषण कहते हैं। वेदोंको व्याख्यायित करते हुए वायु पुराण (62/15) में महर्षि वेदव्यासने अपनी चिंता प्रकट करते हुए कहा है कि इस सृष्टिके अपने स्वरूपमें अधिष्ठित हो जाने पर इसका अंधा धुंध दोहन न किया जाए, क्योंकि मनुष्यों के क्रियाकलापों तथा अतिशय भोगवादिता के कारण प्राकृत पदार्थों में समय पूर्ववेदोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो कल्पके अंत में

आनेवाली प्रलयमें उत्पन्न होते हैं, जिससे यह दृश्य प्रकृतिलय की ओर अग्रसर हो दुःखद हो जाता है। ऋग्वेद (10/86/5) का ऋषि भी इसी प्रकार चिंता करते हुए कहता है कि पर्यावरण प्रदूषण द्वारा बनाए हुए व्यक्त पदार्थों को, जब मनुष्य अपनी अतिशय भोगतृष्णा से दूषित करता है, तब यह प्रकृति उसके सिरको झुका देती है। ऐसे विनाशकी ओर जानेवाला विश्व के लिए यह प्रकृति सुज्ञेय एवं सुखकारी नहीं होती।

प्रदूषणका प्रभाव :

प्रदूषण के कारण अत्यधिकता पबढ़ जानेसे सूर्यादि ग्रह क्रूर हो जाते हैं और सर्य की किरणें उग्रहोकर स्थावर, जंगल, नदी, पर्वत, वनस्पति आदितीनों लोकों को जला ने लगती हैं (महाभारत, भिष्म पर्व, 77/11 तथा वायु पुराण, 7/41-42।) इसी प्रकार मत्स्य पुराण में भी कहा गया है कि प्रचंड सूर्य अपनी किरणों से समुद्रों को शोषित कर संपूर्ण नदी, कूप एवं पर्वतों के झरनों के जलको भी सूखा देता है और अंत में वह अपनी प्रलय कालीन किरणों द्वारा पृथ्वीका भेद न करता हुआ, पाताल के जल को भी अर्थात्भू गर्भ के जल कोभी खींच लेता है (मत्स्य पुराण, 165/1-3)। इससे भूगर्भीय जल का स्तर निरंतर नीचे गिरने लगता है, जिससे कुएं और नलकूप असफल होने लगते हैं और चारों ओर विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु में पानी के जल का भीषण संकट ग्राम और नगर सब ओर दिखाई देने लगता है। इस भीषण अग्नि से, वन आदि जल ने लगते हैं। मत्स्य पुराण (165/11/1) में इसी प्रलयकालीन संवर्तक अग्निके विनाशक रूप का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार अधिक ताप उत्पन्न होने के कारण भयानक आंधियां चलने लगती हैं और प्रकुपित वायु के प्रकोपसे विनाशकारी मेघ, सूर्य, अग्नि और आंधियों की उत्पत्ति होती है (महाभारत, शल्यपर्व, 66/6)। यह प्रकुपित वायु समुद्रों को भी सुखा देती हैं, जिससे भीषण जल-संकट उत्पन्न हो जाता है। अधिक ताप उत्पन्न

होने के फल स्वरूप वृष्टि (वर्षा) असंभव हो जाती है और अनावृष्टि से चारों ओर हाहाकार मचने लगता है। यही संकेत ब्रह्म पुराण (231/14) में भी किया गया है। इस प्रकार बढ़े हुए ताप को ही 'कालाग्नि' के नामसे अभिहित किया गया है और उसके द्वारा विदग्ध हुई भूमिका भयावह चित्रण करते हुए महाभारत (शांति पर्व, 293/4) में कहा गया है कि इससे समस्त स्थावर-जंगल प्राणियों के नष्ट होने का संकट उत्पन्न हो जाता है और अंत में समुद्रों का जल सूख जाने के कारण इस भूमिके जल और तृण आदिसे रहित होने पर कछु एकीपीठ की तरह स्वरूप होने की संभावना प्रबल हो जाती है। इस प्रकार अत्यधिक ताप और भयानक आंधियों के पश्चात उनसे भी अधिक भयंकर घने मेघ आकाशमें उत्पन्न होते हैं और घनघोर वर्षा द्वारा इस संसार के जल – प्लावित होने का भय उत्पन्न हो जाता है, जिससे इस सृष्टिके डूबकर नष्ट होने की संभावनाएं प्रबल हो जाती हैं (मत्स्य पुराण, 165/15)। ब्रह्म पुराम (232/14-19) में इसी प्रकृति-प्रलयकी संभावनाओं को प्रदर्शित करते शार्दूल-मुनिने पर्यावरण रक्षाके लिए विश्व को सचेत रहने का उपदेश किया है और भौतिक पर्यावरण में इनकी रक्षाका उपाय बताते हुए, इनके स्थान क्रम को इस प्रकार परिगणित किया है- **1. पृथ्वी मंडल, 2. जल मंडल, 3. तेजो मंडल, 4. वायु मंडल और 5. आकाश मंडल।** इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार हैं-

पृथ्वी मंडल:

इस संदर्भ में भूमि, वन, प्राणी, पर्वत, ग्रह और ऋतु आदि का समावेश किया गया है। प्राकृतिक पदार्थों का विशिष्ट उपभोक्ता मनुष्य ही है। उपभोग की अधिकांश वस्तुएं इस प्रकृति में हैं, इस लिए भौतिक पर्यावरण में प्रथम स्थान में परिगणित पृथ्वी आदि शब्द विचारणीय है। पृथ्वी के अनेक गुणों के कारण उसके अनेक पर्यायवाची शब्द उसमें अभिहित अर्थोंकी ओर संकेत करते हैं। उक्त नामों में से कुछ नामों पर संहिता ग्रंथों एवं वैदिक व्याख्यापरक

वाङ्मय में विवेचनाकी गई है। यहां स्थाना भाव के कारण उनके केवल संदर्भ दिए गए हैं। यथा-

1. पृथ्वी (तैत्तिरीय संहिता, 2/1/2/3, निरुक्त, 1/4/5, ऋग्वेद सायण भाष्य, 5/85/1 और अमरकोश, रामाश्रमी : टीका, पृ. 141) के विस्तार के कारण पृथ्वी है।
2. गौः (निरुक्त 2/2/5) गतिके कारण गौ है।
3. भूमि (रामा श्रमीटीका, अमरकोष पृ. 141) निवास योग्य होने के कारण भूमि है।
4. वसुंधरा (वही, पृ. 141 रत्न आदि धनों से युक्त होने के कारण। 5. मही (वही, पृ. 141) पूजनीय एवं इस में प्राणियों के बड़े होने के कारण।
5. धरा (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
6. धरणी (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
7. अवनी (वही, पृ. 141) प्राणियों की रक्षा एवं पालन करने के कारण।
8. मेदिनी (वही, पृ. 141) समस्त प्राणियों से स्नेह होने के कारण।
9. स्थिरा (वही, पृ. 141) अपने स्थान परस्थित रहने के कारण।
10. विश्वंभरा (वही, पृ. 141) सबका भरण-पोषण होने के कारण।
11. रसा (वही, पृ. 141) रससे परिपूर्ण होने के कारण।
12. क्षमा (वही, पृ. 141) क्षमाशील होने के कारण।
13. गोत्रा (वही, पृ. 142) सहनशील होने के कारण।
14. सर्वसहा (वही, पृ. 142) सब कुछ सहने के योग्य होने के कारण।
15. अचल (वही, पृ. 142) स्थित होने के कारण।
16. अनंता (वही, पृ. 142) अंतिम छोर न होने के कारण।

इसी प्रकार पृथ्वी-उत्पत्ति के इतिहास पर, सृष्टि-सृजन से लेकर आजतक चिंतन करने पर, उसके स्वरूप काभी बोध होता है। यथा-

1. मृणमयी पृथ्वी-भुवन मात्रमें प्रथम उत्पन्न होने के कारण इस भूमिको मृणमयी कहा गया है (यजुर्वेद, 37/4 एवं शतपथ ब्राह्मण, 14/1/2/10)। जल प्रधान आर्द्रा पृथ्वीमें अग्नि और जल के मेलसे मलाई रूप झाग (फेन) उत्पन्न होकर, जब वह कुछ ठोस आकृतिमें परिवर्तित हो गया, तब वही मृद कहलाया। वही मृद पृथ्वी कहलाई (शतपथ ब्राह्मण, 14/1/2/9)।
2. अश्ममयी पृथ्वी- मृदा के तप्त होने पर सफेद और काली दो प्रकार की सिकता बनी। (शतपथ ब्राह्मण, 6/1, 3/4/7, 3/1, 4/3) और ढीली पृथ्वी को देवोंने कंकर – पत्थर से दृढ़ किया (शतपथ ब्राह्मण, 6/1/3/3 तथा मैत्रयणी संहिता 1/6/3)। इस प्रकार पृथ्वी अश्ममयी हुई।
3. रत्नगर्भा भूमि (अथर्ववेद 12/1/26 तथा गोपथ ब्राह्मण, 2/2/7)।
4. अग्निगर्भा पृथ्वी (अथर्ववेद, 12/1/21, शतपथ, 14/9/4/21 तथा जैमनीय ब्राह्मण, 3/186)।
5. परिमंडल पृथ्वी (शतपथ ब्राह्मण, 7/1/1/37 वजैमिनीय ब्राह्मण, 1/2/5/7)।
6. हरित भूमि (ऋग्वेद 5/84/3, 6/47/27, 7/34/23 व मैत्रायणी संहिता, 3/9/2, 4/5/5/ जैमनीय ब्राह्मण, 2/5/4 व कोषीतकी ब्राह्मण, 6/14)।
7. गंधवती पृथ्वी (अथर्ववेद, 12/1/23-25 तथा शतपथ ब्राह्मण, 9/4/1/8, 10)।

पृथ्वी एवं पर्यावरण :

वेदोंमें सर्वप्रथम भूमि संस्कारवान बनाने के लिए कहा गया है। भूमि और अन्न को प्रदूषण रहित रखने के लिए मलिन अथवा विषयुक्त खाद डालकर उसे बिगाड़ने के प्रतिनिषेध किया गया है। यजुर्वेद में हल बैलों द्वारा खेतों को जोतकर, उत्तम अन्नोंके बीज बोनेका निर्देश दिया गया है। खेतों में गोबर-खाद डालें और विष्ठा आदि मलिन पदार्थ न डालने के लिए कहा गया है। बीजों को सुगंध आदि से उपचारित करके बोएं ताकि अन्न भी रोग रहित होकर मनुष्य की बुद्धि को बढ़ाए। वहां निर्देश दिया गया है कि खेतोंको घी, मीठा, और जल आदिसे संस्कारित करें। पृथ्वी पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है। प्राणी जिसपर बसते हैं और जिसके आधारपर जीवन पाते हैं, वह भूमि निश्चयही वंदनीय एवं अतिशय उपयोगी है। इसी लिए पृथ्वी को माता कहकर नमन करने का संकेत वेद मंत्रों में है (अथर्ववेद, 12/1/23/2/5, ऋग्वेद, 10/18, 10/11 यजुर्वेद 9/22, 13/18, 36/13 व अथर्ववेद, 12/1/1-3, 12/1/6, 10/12, 6/21/1)। पृथ्वी के अत्यधिक महत्व का प्रतिपादन आधुनिक पर्यावरण विदोंनेभी किया है। भूमि या मिट्टी सर्वाधिक मूल्यवान संसाधन हैं, क्योंकि विश्व के 71 प्रतिशत खाद्य पदार्थ मिट्टी से ही पैदा होते हैं। 2 प्रतिशत भाग में ही कृषि योग्य भूमि है, जो निम्न प्रकार है-

1. कृषि भूमि – भूमंडल का 2 प्रतिशत- 71 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
2. वन भूमि- भूमंडल का 8.8 प्रतिशत- 10.4 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
3. घास मैदान- भूमंडल का 7.2 प्रतिशत- 12 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
4. दलदल व मरुस्थल – भूमंडल का 10.4 प्रतिशत- 3.3 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।
5. समुद्र- 71.8 प्रतिशत- 3.3 प्रतिशत खाद्य पदार्थ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमिया मिट्टी एक अतिसीमित किंतु मूल्यवान संसाधन है। खाद्य पदार्थों की समुचित उपलब्धिके

लिए इस सीमित संसाधन को प्रदूषणसे बचाना आज की अनिवार्य आवश्यकता है।

प्रदूषण रहित भूमि एवं उसका संरक्षण :

ऋग्वेद में भूमि संरक्षण संबंधी विभिन्न विचार उपलब्ध हैं। उनमें ऋषि द्वारा विद्वानों को सत्य लक्षणों से युक्त ज्ञान से प्रकाशित मंत्रोंसे भूमिको धारण करने का निर्देश दिया गया है (ऋग्वेद, 1/67/3)। उनमें राजा को आदेश दिया गया है कि वह धन, औषधि, जल आदि को धारण करने वाली पृथ्वी की सुरक्षा करें (ऋग्वेद, 3/51/5 तथा 3/55/22)। यजुर्वेद में यह कामना करते हुए संदेश दिया गया है कि भूमिको अपने दुष्कर्मोंसे न बिगाड़ें, उसको प्रदूषित करना उसके प्रति हिंसा है। भूमिकी हिंसा हम और हिंसा हमारी भूमिनकरे (यजुर्वेद, 10/23)। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि सबका पालन करने वाली भूमिकी उपजाऊ शक्तिको नष्ट न होने दें। हे भूमि, हम तेरी खुदाई करें, वह शीघ्र भर जाए, हम तेरी हिंसा न करें (अथर्ववेद, 12/1/34-35)। भूमिसूक्तके ऋषि प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि यज्ञ भूमिमें देवताओं के लिए हम अंलकृत हव्य प्रदान करें। उसी भूमिमें मरणशील मनुष्य स्वधा और अन्न से जीवन धारण करते हैं। वह भूमि हमें वृद्धावस्था तक प्राणप्रद वायु प्रदान करे। पृथ्वी की गोद हमारे लिए निरोग और सब रोग से रहित हो। दीर्घकाल तक जागते हुए हम अपने जीवन को इसकी सेवा में लगाएं (अथर्ववेद, 12/1/22 तथा 12/1/62)। भूमि सूक्त का ऋषि हमें बताता है कि निवास योग्य तथा विभिन्न कार्यों में प्रयोग होने वाली भूमिका संरक्षण करने से वह सुखद होती है। हे भूमि, तुम्हारी पहाड़ियां, हिमाच्छादित पर्वत, वन, पुष्टि देने वाली भूरेरंगकी मिट्टी, कृषि-योग्य काली मिट्टी, उपजाऊ लालरंगकी मिट्टी अनेक रूपोंवाली, सबका आश्रय स्थान, स्थिर भूमिपर अजेय, अवध्य और अक्षत रहकर हम निवास करें (अथर्ववेद, 12/1/11)। वेदों में मनुष्य को समृद्ध बनाने वाली उर्वरा भूमि के लिए कृषकों एवं वैज्ञानिकों की प्रेरणादी गई है कि वे उसकी उर्वरा-

शक्ति बनाए रखने के लिए पर्यावरण-प्रदूषित करने वाले खाद के स्थान पर, गोबर-खाद प्रयुक्त खेती को ही उत्तम फलवती मानकर, मधुर अन्न उत्पन्न करनेवाले खाद के स्थान पर उन्नत करें। बार-बार बुआईसे भूमिकी उर्वरा शक्ति नष्ट होने की ओर संकेत किया गया है कि सबकुछ देने वाली जिस विस्तृत पृथ्वी की जागरूक, विविध व्यवहारों में कुशल विद्वान प्रजाजन प्रमाद रहित हो कर रक्षा करते हैं, उस भूमिको हम प्रिय मधुदिया करें तथा हम उसके तेज को बढ़ाएं (अथर्ववेद, 19/31/2 तथा 12/17)।

प्रदूषण रहित प्राचीन कृषि विज्ञान :

वेदों में सर्वप्रथम भूमि संस्कारवान बनाने के लिए कहा गया है। भूमि और अन्न को प्रदूषण रहित रखनेके लिए मलिन अथवा विषयुक्त खाद डालकर उसे बिगाड़ने के प्रतिनिषेध किया गया है। यजुर्वेद में हल बैलों द्वारा खेतों को जोतकर, उत्तम अन्नों के बीज बोने का निर्देश दिया गया है। खेतों में गोबर-खाद डालें और विष्ठा आदि मलिन पदार्थ न डालने के लिए कहा गया है। बीजों को सुगंध आदि से उपचारित कर के बोएं ताकि अन्न भी रोग रहित होकर मनुष्यकी बुद्धिको बढ़ाए। वहां निर्देश दिया गया है कि खेतोंको घी, मीठा, और जल आदि से संस्कारित करें। यहां मीठा का अर्थ शहद या शक्करसे लिया गया है। प्रदूषण रहित कृषि ही राष्ट्र निवासियों को बलवान बनाती है। इसलिए राजा को भी आदेश दिया गया है कि राजा हमारे लिए ऐसी खेती को सदैव बढ़ावा दें, उसे प्रोत्साहित करें। मनुष्यों में तेज और बल बढ़ने से ही उत्तम राष्ट्र उन्नतिशील होता है और यह संभव होता है प्रदूषण रहित कृषि अपनानेसे (ऋग्वेद, 10/101/3, 4 तथा यजुर्वेद 4/10, 12/69/70, 23/46 एवं अथर्ववेद 8/10/12 व 3/12/4)।

यज्ञ द्वारा प्रदूषण निवारण :

भूमि प्रदूषण निवारण हेतु अनेक उपाय वैदिक साहित्यमें उपलब्ध हैं। उन उपायों में यज्ञ महत्वपूर्ण है, जिससे पृथ्वी सस्यादिसे पुष्ट होकर सुख देनेवाली बनती है। वैदिक ऋषि कहते हैं कि विस्तृत

द्युलोक तथा भूमि हमारे इस यज्ञ का सेवन करे और वे यज्ञसे पोषण प्राप्तकर, हमारे भरण-पोषण करें। क्यों कि यजमान द्वारा अनुष्ठीयमान यज्ञ वर्षा कारक इंद्र की शक्ति को बढ़ाता है और भू-लोक को विविध अनाज आदि से पुष्ट करता है (ऋग्वेद 1/22/13 तथा 8/14/5)। प्रदूषण से भूमि फलवती नहीं होती, जिसे आचार्य सायणने अनृत का परिणाम लिखा है। उन्होंने कहा है कि सत्य विरोधी अधर्माचरण से भूमि में अन्नादि नहीं फलते। यजमान द्वारा यज्ञादि में दी गई आहुतिसे देवगण नया जीवन पाते हैं। अग्निमें घी-सामग्री को हविदेनेसे भूमि महती होती है और वर्षा द्वारा अनाज आदि की वृद्धि के कारण औषधिसे प्रवर्धित पृथ्वी बलवती होती है (ऋग्वेद, 10/85/ 1-2)। यजुर्वेद में भी पृथ्वी को यज्ञ के द्वारा समर्थ बनाने की कामना की गई है। उसमें कहा गया है कि विस्तृत भूमि और उसमें स्थित पत्थर, हिरा आदि रत्न, मिट्टी, मेघ, छोटे-बड़े पर्वत और उसमे होने वाले पदार्थ, रेत आदि और बड़, पीपल, आम आदि वृक्ष, सोना, चांदी, लोहा, तांबा, नील मणि, चंद्र मणि, सीसा और लाख, जस्ता एवं पीतल आदि- ये सब यज्ञ से समर्थ होते हैं (यजुर्वेद, 18/13/18)। इसमें पृथ्वी को भस्मसे भरने का भी संकेत है, जो यज्ञ से प्राप्त होती है, चूंकि यज्ञ की भस्म द्वारा उत्तमोत्तम औषधियों का क्षार तत्व पृथ्वी को प्राप्त होता है (यजुर्वेद 6/21 तथा मैत्रायणी संहिता 3/9/4)। यजुर्वेद में आया है कि भूमिको उपयोगी बनाते समय यज्ञ का प्रयोग करें। इससे पृथ्वी समर्थ और शक्तिशाली बनेगी। वर्षाभी यज्ञ द्वारा समर्थ होती है। वहां यह भी कहा गया है कि यदि उत्तानलेटी हुई भूमि का हृदय क्षतिग्रस्त हो गया है और उसकी उपजाऊ शक्ति क्षीण या समाप्त प्रायः होगई है तो कुछ समय उसमें खेती न करके तथा उसे खाली रखकर उसमें शुद्ध वायु, सूर्यरश्मि, वर्षा आदि द्वारापुनः शक्तिका संधान करना चाहिए (यजुर्वेद, 18/9, 11/39 एवं आर्षज्योति, पृ. 261)।

पर्यावरण का संदेश :

अथर्ववेद में 'भूमिकी हरेपनसे रक्षा करने' का जो संदेश है, उसके द्वारा दो बातें कही गई हैं। प्रथम तो यह कि पर्यावरण तथा प्राणियों की रक्षा पृथ्वी में हरियाली के माध्यम से होती है एवं द्वितीय यह कि भूमि भी पेड़-पौधोंकी हरितिमासे सुरक्षित रहती है। इसलिए भूमिको प्रदूषण से बचाए रखने के लिए न केवल हरियाली के प्रभाव को समझना होगा, अपितु सघन वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाकर, धरतीपर हरियाली का हरसंभव प्रयास करना होगा। यही कारण है कि हमारे चिंतक मनी षियोंने वृक्षों एवं वनों की रक्षाकरने वालों का विशेष सम्मान करने तथा उन्हें सतत् अन्न-धन देते रहने का संदेश दिया है। इसी लिए अथर्व वेद के भूमि सूक्त में ऋषि ने भूमिसे भी कहा है कि तेरे जंगल हमारे लिए सुखदायी हों (अथर्ववेद, 5/28/5, 12/1/11 तथा यजुर्ववेद, 16/18-20)। सुश्रुत संहिता (कल्पस्थान, 3/12) में भूमि उपचार (चिकित्सा) का वर्णन करते हुए बताया गया है कि अनंता (सारिवा) को एलादिगण (सर्वगंधा) के साथ सुरा में पीसकर दूध तथा काली मिट्टी अथवा वाल्मीकि मिट्टी मिला कर इससे छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त वायविडंग, पाठा, कटभी (अपराजिता) आदि द्रव्यों के काढ़ेसे प्रदूषित भूमि में परिषेक क्रिया करें।

वैदिक काल में लोक जीवन वनस्पतिमय था। वन्य प्रदेशों में तो वनस्पतियों का बाहुल्य था ही, ग्रामीण क्षेत्रों में भी उसकी अधिकता थी। इसकारण मनुष्य अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति उसी के माध्यमसे करता था। यज्ञों में भी वनस्पतियों का विशेष उपयोग था। इन प्राकृत प्रयोजनों के अतिरिक्त विकारों के निवारण के लिए भी वनस्पतियों का प्रयोग होता था। प्राचीन मानव के योगक्षेम में वनस्पतियों का महत्वपूर्ण स्थान था। यही कारण है कि हमें वैदिक वाङ्मयमें औषधि-वनस्पतियों की स्तुतिमें अनेक मंत्र उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद के औषधि सूक्त (1/187 तथा 10/97) तो प्रसिद्ध ही हैं, अथर्ववेद में भी ऐसे अनेक स्थल (अथर्ववेद, 8, 7, 11,

6, 19, 28, 44) तथा यजुर्वेद का 12वां अध्याय है, जहां मंत्र दृष्टा महर्षि वनस्पतियों की स्तुति करते नहीं अघाते। वैदिक कालमें प्रकृतिके साहचर्य सेभी वनस्पतियों का ज्ञान प्राप्त किया गया। सभ्यता के विकास के साथ जैसे-जैसे उसकी आवश्यकताएं बढ़ने लगीं, वैसे-वैसे वनस्पतियों का क्षेत्र विकसित होता गया। इस कार्य में उसने प्राणियों सेभी सहायताली। पशु-पक्षी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिन औषधियों का उपयोग करते थे, उनपर भी मनुष्यने अपने लिए प्रयोग किए। पशु ओंकी प्रयोगशाला में भी उसने अनेक अनुसंधान किए (अथर्ववेद, चिकित्सा विज्ञान, पृ. 69-70)। कुछ पौधोंको वराह (सूअर) जानता है और कुछ औषधियों को नेवला, कुछको सांप और गंधर्व। कुछ आंगिरसी औषधियां सुपर्ण (चील, गिद्ध) जानते है और कुछ रघट जानता है। कुछ को पक्षी एवं हंस तथा अन्य पंखवाली चिड़िया जानती हैं। कुछ औषधियां मृग जानते हैं। नजाने कितनी औषधियां गौएं खाती हैं और कितनी भेड़-बकरियां। ये सब औषधियां कल्याणकारी और पोषक हों (अथर्ववेद, 8/7/23-25)। इसी प्रकार आयुर्वेद के आचार्योंने और भी अनेक औषधियों का आविष्कार किया, जो पर्यावरण संतुलन के लिए अत्यंत आवश्यक थीं (वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, डॉ. सत्य प्रकाश, पृ. 219)। इसी प्रकार वैदिक ऋषि अत्रिने वन और वर्षा का परस्परसंबंध बताते हुए कहा है कि वनोंसे जल फैलाया जाता है (ऋग्वेद, 5/85/2)। जंगलों से अधिक वृष्टि होने के प्रमाण भी वेदोंमें मिलते हैं। सूर्यकी किरणें अंतरिक्ष में जलका संचय करके अवर्षण के समय में भी वर्षा को वनोंके ऊपर गिरने की प्रेरणा करती हैं। इसलिए जंगलों में कभी अवर्षण नहीं होता (ऋग्वेद, 1/24/7 तथा वैदिक संपत्ति, पं. रघुनंदन शर्मा, पृ. 654)। औषधियां पृथ्वीकी आच्छादक होने से वस्त्र के समान हैं (एतरेय ब्राह्मण, 5/28)।

प्राचीन ऋषिगण, औषधियों के पर्यावरणीय महत्वसे भली भांति परिचित थे। वे औषधियों को प्रदूषण नाशक मानते थे।

(ऋग्वेद, 1/191/2)। उन्होंने औषधि 'अवघ्नती' को अपने गंधसे अनेक विषोंको नष्ट करने वाली तथा कीटोंको मारने वाली बताया है। (वैदिक साहित्य में शल्यचिकित्सा एक अध्ययन, डॉ. रामजी विश्वकर्मा, पृ. 105)। पर्यावरणपर औषधियों के प्रभाव को बताते हुए कहा है कि जहां भी प्रदूषण होता है, वे उसे बाहर निकाल देती हैं (यजुर्वेद, 12/84/91/101)। यहां राजा को प्राकृतिक संसाधनों को न बिगाड़ने का आदेश दिया गया है और प्रत्येक स्थान में जल और औषधियों, अन्नपान पदार्थों तथा वनजपदार्थोंको न बिगाड़ने की भी व्यवस्था करें (यजुर्वेद, 12/72)।

औषधियां प्रदूषण हरनेवाली होती हैं (अथर्ववेद, 8/7/10, 13, 14, 17)। जितनी औषधियां इस पृथ्वीके ऊपर हैं, सहस्त्रों पोषणवाली, वे सब हमें प्रदूषणसे बचाएं। संहिता ग्रंथों में भी औषधियों को प्रदूषण-नाशक कहा गया है (तैत्तिरीय संहिता, 4/2/6/1, मैत्रालयी संहिता, 2/7/13, काठक संहिता, 16/13, मैत्रालयी संहिता 4/9/27)। पृथ्वीके जिस भाग में अधिक पौधे होते हैं, वह स्थान प्राणियों के लिए अतिशय जीवनोपयोगी होता है (शतपथ ब्राह्मण, 1/3/3/10)। ऋषि पुनर्वसुने छह प्रकार के जिन पौधोंको पर्यावरण को शुद्ध करनेवाला माना है, वे इस प्रकार हैं- स्रुही (थुहर), अर्क (आकंड़ा), अश्मंतक (पथरचटा), पूतीक (करंज), कृष्णगंधा (सहजना), तिल्लक (पठानीलोध), (चरक संहिता, सूत्रस्थान, 1/76)।

अथर्ववेद में जिन पर्यावरणोपयोगी पेड़-पौधोंका वर्णन हैं, वे इस प्रकार हैं- 1. अश्वत्थ, 2. शमी, 3. वरणवर्ती, 4. अजश्रृंगी, 5. अपामार्ग, 6. उदुंबर, 7. दर्भ, 8. जडिगड़, 9. शतावर, 10. गुग्गुल, 11. करीर, 12. पलाश। करीरकी यज्ञमें आहुति देनेसे शीघ्र वृष्टि होती है। पलाशको ब्रह्मतुल्य कहा गया है, जो व्यापक प्रदूषणों को दूर करता है।

पर्यावरण – संरक्षण और प्राणी :

प्राणीभी पर्यावरण के लिए मुख्य घटक हैं। पर्यावरण को जीवंत रखने के लिए पशु – पक्षी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मनुष्य, जीवत था पेड़-पौधे परस्पर संबद्ध हैं, इसलिए पर्यावरण संरक्षण में प्राणियों का सुरक्षित होना नितांत आवश्यक है। ये प्राणी-पर्यावरणसे, पर्यावरण में और पर्यावरण के लिए जीते हैं, इसलिए प्राचीन साहित्यमें पशु – पक्षियों के स्वरूप, महत्व एवं भेदपर हमें बहुत अधिक विवरण प्राप्त होता है। यथा -

1. अग्निमयपशु – अग्निका तेज प्रदूषण निवारण में सक्षम है। अग्नि के तेजसे उत्पन्न होने के कारण पशुओं को आग्नेय कहा गया है (कपिष्ठल संहिता 38/1, एतरेय ब्राह्मण, 2/6, तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1/1/4/3)।
2. गंधमय पशु-पशु एक विशिष्ट गंध से समाविष्ट हैं, जो प्रदूषण निवारण में सक्षम है। देवताओंने यह गंध, सोमसे लेकर, पशुओं में प्रविष्ट की है, अतः इस गंधको घृणित समझकर नाक बंद नहीं करनी चाहिए (शतपथ ब्राह्मण एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 223)।

3. मारुत पशु- पशु मरुत गुणसे भी संबंधित हैं, जो प्रदूषणको विनष्ट करते हैं (ऐतरेय ब्राह्मण, 3/19)।

पशुओं का पर्यावरणीय महत्व इसीसे सिद्ध हो जाता है कि उनकी उपस्थिति मात्रसे वायु और भूमि आदिमें विद्यमान दोष स्वतः दूर हो जाते हैं। उनके गंध और अग्नि तेजसे रोगाणु तथा विषतो नष्ट होते ही हैं, पशुओं द्वारा प्रदत्त दूध, घी एवं मल-मूत्र भी रोग तथा विषनाशक हैं। पशुओं में सर्वाधिक उपयोगी गाय है। ऋग्वेद में गायको यज्ञ पूरक तथा दुग्ध आदिसे बढ़ानेवाली कहा गया है (ऋग्वेद, 10/69/3)। वैज्ञानिकों का मत है कि गाय के रोम-रोम से ऑक्सीजन निःसृत होती है। गौ- घृतसे तैयार यज्ञ-आहुतिसे ऑक्सीजन तैयार होती है। बकरियां क्षयरोग को विनष्ट करती हैं।

अपान शुद्धि के लिए बकरी का दूध, ज्ञान युक्त वाणी बढ़ाने के लिए भेड़का दूध, ऐश्वर्य वृद्धिके लिए गौ-दुग्ध, रोग निवारण में औषधियों का रस तथा बल के लिए संस्कार वान अन्न का भोजन करनेका परामर्श दिया गया है (यजुर्वेद, 21/59-60)। घोड़े के हिन हिनानेसे ज्वर और खांसी आदिका निवारण होता है (अथर्ववेद, 2/30/5, 11/2/22)। बैल पृथ्वीको धारण करता है और परिश्रमसे प्रदूषणको विनष्ट करता है (अथर्ववेद, 4/11/1, 4/10)। मृग (हिरण) भी पर्यावरण-प्रदूषण को दूर करने में समर्थ है। शीघ्रगामी हरिणके मस्तकके भीतर औषधि है, वह अपने सींगसे क्षेत्रीय रोग और विषको नष्ट कर देता है (अथर्ववेद, 3/7/1/2)। इनकी रक्षा के लिए कठोर - से-कठोर दंडका प्रावधान करते हुए कहा गया है कि जो पुरुष घोड़े तथा गाय आदि पशुओं की हत्या, मांसाहार के लिए करता है, वह राक्षस है। पर्यावरण के पोषकतत्वों को नष्ट करनेवाले कठोर - से-कठोर दंड के योग्य हैं।

मनुष्य समाज में गृह –निर्माण कला का अतिशय महत्व है। वास्तुकलापर ऋषियोंने चिंतन करते हुए कहा है कि जब कोई मनुष्य घर बनाए तो वह सबतरहकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला उत्तम उपमायुक्त हो, जिसे देखकर विद्वान, लोग सराहना करें उसमें एक द्वार के सामने दूसरा द्वार तथा उसके कोने एवं कक्षा भी सम्मुख हों। वह चारों ओर के परिमाण से समचौरस हो।

इसी प्रकार तोता पक्षी को पीलिया (कामला) रोग को हरने वाले क्षय रोगसे दूषित वायुको चीड़के वृक्ष और बकरी-बंदर आदि पशु अधिक अपनाते हैं। ऐसे ही मनुष्यके कामला रोगको दारु हल्दी के वृक्ष एवं हरे तोते अपनाते हैं (अथर्ववेद, 1/22/4 तथा अथर्ववेदीय मंत्र विद्या, स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक पृ. 26)। गरुड़ और मोर तथा सर्प आदि विषभक्षक हैं (अथर्ववेद, 4/6/3-4)। इस तरह हम देखते हैं कि भूमि, वृक्ष, पशु-पक्षी तथा मनुष्य – एक –दूसरे के पूरक ही नहीं अपितु अभिन्न हैं। ये पर्यावरण-चक्रके परे हैं। इनमें से किसी एक का

भी अभाव सृष्टि प्रवाह में बाधक ही नहीं, अपितु पर्यावरण के लिए घातक है।

पर्यावरण एवं पर्वत :

पर्वत भी पर्यावरण के महत्वपूर्ण भाग हैं। पृथ्वी में कीलकी तरह विद्यमान पर्वत, न केवल भूमिकी सुरक्षा के लिए हैं, अपितु पर्यावरण संतुलन में उपयोगी भी हैं। औषधि, जल और विभिन्न रत्नों के केंद्र होने के कारण पर्वतों की उपयोगिता है। अथर्ववेद (3/21, 10/8, 7/17)। में उल्लेख है कि मनुष्य प्रयत्न करे कि सोम लता आदि औषधियां उत्पन्न करने वाले पर्वत, जल, वायु, मेघ, अग्नि आदि सब पदार्थों को शुद्ध रखकर सुखदायक हों। पर्वत शब्द के अर्थपर चिंतन करने से भी पर्वत महत्वका बोध होता है। पालनार्थक और पूरणार्थक 'पृ' धातुसे 'पर्व' शब्द बनता है, जो पालनाकरे और कामनाओं की पूर्तिकरे, वह पर्व कहा जाएगा। ऐसे पदार्थ जिसके पास हों, वह पर्वत कहलाएगा। पर्वतों में हमारी पालना एवं आवश्यकताओं की पूर्ति तथा प्रदूषण को विनष्ट करने वाले अनेक पदार्थ होते हैं (ऋग्वेद, 3/57/6, 6/24/6, अथर्ववेद, 20/51/2 तथा वेदोंके राजनीतिक सिद्धांत, आचार्य प्रियवत, पृ. 507)।

पर्यावरण एवं निवासस्थान :

पर्यावरण में गृह का विशेष महत्व है। परिवेशका अपर पर्याय आवास को कहा जा सकता है। जिस आवास में हम रहते हैं, वह न केवल हमारे लिए, वरन्पशु-पक्षियों के लिए भी उपयुक्त होना चाहिए। इस दिशा में भी वैदिक ऋषियों ने पर्याप्त चिंतन किया है। ऋग्वेद में हवादार तथा प्रकाश युक्त विशाल घरको परम्पद प्राप्ति में सहायक कहा गया है। यहां दीर्घ तमा ऋषि ने ऐसा घर बनाने का उपदेश किया है (ऋग्वेद 1/154/6)। अथर्ववेद के शाला-देवता वाले सुक्त में भी गृह महत्वका प्रतिपादन है। इन मंत्रों में प्रयुक्त शालाके विशेषण, पर्यावरण की दृष्टिसे विशेष महत्वपूर्ण एवं चिंतनीय हैं। उसमें कहा गया है स्थिरतासे स्थापित घर, गाय और घोड़ेसे युक्त बल

प्रद, दूध, घी से भरपूर, महान्सौ भाग्य के लिए है। विशाल छतके नीचे शुद्ध अन्न-धन का भंडार हो। सुख देने वाली देवी शाला, देवताओं की आश्रयस्थली है। घास – पात से ढंकी हुई, घृतकी अमृत धारा से संपृक्त शाला में अग्नि के साथ निवास करें (अथर्ववेद, 3/12/2, 3/5, 8/9)।

वास्तु कला:

मनुष्य समाज में गृह-निर्माण कला का अतिशय महत्व है। वास्तुकला पर ऋषियों ने चिंतन करते हुए कहा है कि जब कोई मनुष्य घर बनाए तो वह सब तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला उत्तम उपमायुक्त हो, जिसे देखकर विद्वान, लोग सराहना करें उसमें एक द्वारके सामने दूसरा द्वार तथा उसके कोने एवं कक्षा भी सम्मुख हों। वह चारों ओर के परिमाणसे सम चौरस हो। उस घर के द्वार चारों ओर के पवन को ग्रहण करने वाले हों। उसकी चिनाई एवं बंघन दृढ़ हों (अथर्ववेद, 9/3/1, 7,11)। प्रत्येक घर में होम करने का स्थान एवं यज्ञीय पदार्थ रखने का स्थान होना चाहिए। इससे घरकी वायु में विशेष प्रकार के पौष्टिक, सुगंधित, रोगनाशक (प्रदूषण नाशक) और आयुवर्धक तत्वोंकी उपस्थिति एवं वृद्धि बनी रहती है। इससे वायु संस्कारित होती है।घर केवल ईंटों और पत्थरोंसे घिरा हुआ स्थान नहीं होता, यह वह स्थान होता है, जहां परिवार के लोग अपने स्वभाव को सुधारने एवं एक सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी पर चढ़कर जीवन के पुरुषार्थों को पाकर आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं।

जलमंडल :

जलभी पृथ्वीकी तरह ही पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है। जलके बिना किसी तरहका जीवन संभव नहीं। जलके कारण ही पृथ्वीपर जीवन प्रारंभ हुआ। प्राचीन साहित्यकारों द्वारा इसकी अतिशय उपादेयताका ध्यान कर ही जल के- अर्णः, क्षोदः, नभः, अंभः, सलिलम्, आपः, अमृतम्, इंदुः, अंब, तोयम, वारि, इदम् आदि 101 नाम गिनाए गए हैं (निघंटुकोश, 1/12) अमर कोश में पानी के

27 नाम आए हैं, जिनमें से 17 नाम निघंटु में वर्णित हैं (अमरकोश, 1/10/3-5)। अथर्ववेद के आपो देवतावाले सूक्तमें भी जल के कुछ नामों के निर्वचन उपलब्ध हैं (अथर्ववेद, 3/13/1-3)। जल के अनेक अभिधानों के संबंधमें यह अभिमत है कि वैदिक कालमें जलका नामकरण उसके गुणों के आधारपर रखा गया है, जो निश्चित रूपसे पर्यावरण की रक्षा करते हैं।

अथर्ववेद में पर्यावरणको दूषित करनेवालों को चेतावनी देते हुए कहा है कि वे कुएं आदि जल स्रोतों गंदा न करें। इस संदेश के साथ राजा को यथावत्प्रबंध करने के लिए कहा गया है (अथर्ववेद 5/31/8)। इन जल स्रोतोंका प्राचीन साहित्यमें इस प्रकार उल्लेख हुआ है- 1. वर्षा जल को ऐंद्र और दिव्य कहा गया है, 2. नदी एवं नद-गंगा आदि नदियां और सिंधु आदि नद कहे गए हैं, 3. समुद्र, 4. झील, 5. कुआं-कूप तथावापी यह दो प्रकार का होता है। 6. तालाब- (अ) पुष्करिणी (ब) पुष्कर (स) सर –जो प्राकृतिक हो और तड़ाग–जो मनुष्य कृत हो। 7. निर्झर, 8. औदिभद (सोतेकाजल), 9. चौड़ा-जो थोड़ा गहरा हो और बंधा न हो – ऐसा कुआं, 10. विकरि- बालूके नीचे काजल, 11. क्यारी या नहर काजल, 12. पल्लव को गड़ ही कहा गया है और 13. प्रपा-ऋग्वेद में प्याऊको प्रपा कहा गया है। इसी प्रकार जल के अनेक प्रकार वेदसंहिताओं में कहे गए हैं- ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में 14. प्रकार के जल का उल्लेख है, जबकि (शतपथ) ब्राह्मण ग्रंथों में 17 प्रकार के जल का उल्लेख है। आचार्य सायणने 16 नामों का भाष्य किया है। इन सब जलसे पर्यावरण की शुद्धि बताई गई है।

इसी प्रकार आयुर्वेद ज्ञोंने विभिन्न जल के विज्ञान का निरूपण भेदोपभेद पूर्वक लिखा है। यथा-1. धाराजल, 2. समुद्रजल, 3. अनार्तवजल, 4. कारकजल, 5. तौषारजल, 6. हिमजल, 7. आनूपजल, 8. जांगलजल, 9. साधारण जल और 10. नादेयजल।

जल का महत्व:

सृष्टि निर्माण के मौलित तत्वोंमें जल मुख्य घटक है। माता के गर्भमें जिस प्रकार शिशु के चारों ओर कललरस विद्यमान रहता है, जिससे शिशुका संवर्धन, पोषण एवं संरक्षण होता है, उसी प्रकार इस महान ब्रह्मांडके भी चारों ओर रसज्याकुहूक (कोहरा) स्थिति में जल विद्यमान रहता है (वैदिक संपदा, पं. वीरसेन वेदश्रमी, पृ. 381)। जल उत्कृष्ट माता है, क्यों कि इससे पर्यावरण का निर्माण ही नहीं वरन्पालनभी होता है (ऋग्वेद 1, 23/16, 6/50, 7, 10, 9, 2, 10, 17, 10)। जल अमृतमय है (ऋग्वेद, 1/23/19)। जलमहौषध है (ऋग्वेद 1/23/19-21)। वैदिक संहिताओं में जल को दुरित निवारक एवं पाप-संशोधक कह कर, जलके पर्यावरणीय महत्वका प्रतिपादन किया गया है (ऋग्वेद, 1/23/22, 10/9/3)। गायत्री मंत्रसे अभिमंत्रित जलसे राक्षसों का शासन होता है (तैत्तिरीय आरण्यक, 2/2/1)। उसी प्रकार पर्यावरणीय जल विज्ञान में पर्जन्य (बादल) बहुत महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद (5/83/1 से 5, 9, 10/36/4) में कहा गया है कि गरजता हुआ बादल राक्षस-रोग व प्रदूषण को नष्ट करता है। इसी प्रकार नदियों के भी 24 प्रकार के भेद कहे गए हैं (ऋग्वेद 10/75/5-8)। सूर्य और वायु दोनों प्रदूषित जलों को पवित्र करते हैं (यजुर्वेद, 1/12 तथा अथर्ववेद, 4/37/8)। ऋग्वेद (7/47/3) में जल वृष्टि को यज्ञ द्वारा पवित्र करने का संकेत है। अतः घृत को यज्ञ में देवताओं के लिए प्रयुक्त करना चाहिए ताकि वृष्टि जल शुद्ध हो सके (ऋग्वेद, 9/49, 11/3), जिससे पर्यावरण पवित्र होता है। यज्ञसे संस्कारित जल का निर्माण होता है। कुशा आदि अनेक औषधियों सेभी जल शुद्धि बताई गई है।

जल- निर्माण प्रक्रिया

प्राचीन चिंतन में जल निर्माण प्रक्रिया को समझाया गया है। जीवन के देनेवाले मित्र तथा वरुण (प्राणवउदान), वृष्टिका सृजनकर

पृथ्वी एवं द्युलोक को धारण करते हैं (ऋग्वेद, 5/62/3, 7/33, 10-11)। संहिता तथा ब्राह्मण ग्रंथों मेंभी यही प्रतिपादित किया गया है (तैत्तिरीय संहिता, 6/4, 3/3 तथा मैत्रायणी संहिता 4/5/2)।

तेजो मंडल :

अग्नि के नाम व भेद हमें वैदिक साहित्य में इस प्रकार प्राप्त होते हैं-

अग्नि- आचार्य शाकपूणिने अग्नि शब्द को –इण (जानना), अञ्ज (चमकना) यादह (जलाना) तथानी (लेजाना)- इनतीन क्रियाओंसे बना बताया है। अग्नि शब्दके निर्माण में इसे आकार, अञ्जया दहसेगकार और नी से अंतिमवर्ण नि हुआ (निरुक्त, 7/4/14)। अमरकोश के टीकाकारने अग्नि का अर्थ - जाना, चलना किया है, जो गतिशील है वह अग्नि है (अमरकोश, रामश्री टोका, पृ. 20)।

वेदों में अग्नि के निम्न प्रकार आए हैं -

1. वैश्वानर- ऋग्वेद (1/98, 3/3, 1/59, 7-8, 10/88)। आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली अर्थात् अंग्रेजी में इसका अर्थ दिया गया है (Latent Heat of Fusion & Vaporisation)।
2. जातवेद – ऋग्वेद (1/19/1)। इसे अंग्रेजी में Potentional and Kinetic Energy कहा है।
3. द्रविणोदः – ऋग्वेद (1/15/7)। इसे Atomic Energy कहा गया है।
4. इध्म – ऋग्वेद (1/13/1) इसे Thermal Heat कहा गया है।
5. तनूनपात्- इसे Internal Combustion of Fuel Derivatives Like Ghee, Petroleum and Coal Gas etc. कहा गया है। ऋग्वेद (सायणभाष्य, 3/29/11)।

6. नराशंस – (निरुक्त, 8/2/4) इसे Chemical Energy and the Result of Chemical Affinity in Terms of Valancy कहा गया है।
7. ईल – (निरुक्त, 8/2/5) इसे Electromagnetic Field कहा गया है।
8. बर्हि - (निरुक्त, 8/2/6) इसे Echo-Resonant Energy of Use in Rectar etc. कहा गया है।
9. द्वार – (निरुक्त सम्मर्श, स्वामी ब्रह्ममुनि, पृ. 628-632) इसे Electrons in Atomic Arbits कहा गया है।
10. उषासानक्ता – इसे Ions and chagres in electrolytes of Electrostatic and Dynamic Machines Proceeding in a current to Electrodes and Terminals as Positive and Negative Charges कहा गया है।

इसी प्रकार तेजया अग्नि के 108 नाम व भेद वैदिक साहित्य में आए हैं। उनमें कहा गया है कि सर्वप्रथम आग्निको मंथन के द्वारा अथवा ऋषिने उत्पन्न किया (ऋग्वेद, 1/95, 3/29, 2, 6/15/17, 6/16/13) आदि। वेदों में अग्निको 'अपांगर्भः' कहकर जल का पुत्र कहा गया है। अग्निके अनेक भेद बताए गए हैं। अग्नि सात ज्वालाओंवाली कही गई है (ऋग्वेद, 10/8/4)। ऋग्वेद में कम-से-कम 200 सूक्तों में अग्निका वर्णन है। पर्यावरण में अग्निका महत्व सर्वोपरि है। अग्निसे ही प्रदूषण समाप्त होता है। ताप और आर्द्रता दोनों के संयोग से ही किसी भूभागकी वनस्पति तथा जीवमंडल का निर्धारण होता है (संसाधन संरक्षण, भूगोल, राजीव शर्मा, पृ. 23)। ऋग्वेद (1/160/3) में कहा है कि अग्नि यज्ञवेदी एवं शरीरके रोगाणुओंको मारती है। अग्नि को वर्षाकारक माना गया है।

प्रदूषण – निवारण तथा पर्यावरण –पोषण के लिए अग्नि में ही यज्ञ पूर्ण होते हैं। यज्ञ प्रदूषण को नष्ट करता है एवं जगत्को पुष्ट

करता है। यज्ञ जगत्की नाभि है (ऋग्वेद, 1/164, 34-35)। यज्ञ प्राकृतिक शक्तियोंको न केवल वहन ही करता है, अपितु उन्हें अनुकूल भी करता है। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने यज्ञको देवरथ के रूपमें प्रस्तुत किया है (एतरेयब्रा., 2/37)। यज्ञ आरोग्य प्रद है (यजुर्वेद, 19/12)। प्रदूषण-निवारण में वेद पारायण यज्ञों को देखा व परखा जा सकता है। संहिता तथा ब्राह्मण ग्रंथोंमें घी का महत्व न केवल यज्ञ की अग्नि के लिए अपितु पर्यावरण-शोधन में भी महत्वपूर्ण द्रव के रूप में प्रतिपादित है (तैत्तिरीयसं., 2/3, 10/1)। यज्ञ से आणविक-विकिरण का प्रभाव बहुत कम हो जाता है। गाय के गोबरसे घरलीपनेपर विकिरण का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

गोघृत की आहुतियां अग्निमें देनेसे वायुमंडल सुगंधित एवं तुष्टिकारक बनता है। प्रदूषण के कारण वातावरण में समाए रसायन आदि सभी सौम्य विषयों का प्रभाव तत्काल समाप्त हो जाता है। पूनाके फर्ग्यूसन कॉलेज के जीवाणु शास्त्रियोंने एक प्रयोग में पाया है कि नित्य अग्निहोत्र की एक समयकी आहुतियों से 36x22x10 फुट के हालमें कृत्रिम रूपसे निर्मित वायु-प्रदूषण समाप्त हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि एक समय के अग्निहोत्रसे ही 8000 घन फुट वायु का 77.5 प्रतिशत हिस्सा शुद्ध और पुष्टिकारक वायुसे युक्त हो जाता है और 96 प्रतिशत कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। वेदमंत्रों की ध्वनि शक्तिसे भी पर्यावरण को शुद्ध एवं पुष्ट किया जाता है।

वायु मंडल :

पर्यावरणका चतुर्थ 'वायु' महाभूतों की उत्पत्तिके क्रम में द्वितीय तत्व है। वह अन्य तत्वोंसे सूक्ष्म होने के कारण बहुत शक्तिशाली होते हैं। अमरकोश में वायु के वायु, वात, प्राण आदि बीस नाम गिनाए हैं (अ.कोश 1/1/61-63)। कहीं-कहीं इसके 150 तक नामों की गिनती भी है। वायु स्पर्श के गुणसे पहचानी जाती है। पृथ्वीके जन्मसे ही उसे चारों ओर से गैसोंने घेर रखा है, जिसे वायुमंडल कहते हैं। 12 मीलकी ऊंचाईपर कार्बनडाइ ऑक्साइड, 62

मीलकी ऊंचाईपर ऑक्सीजन तथा 80 मीलकी ऊंचाईपर नाइट्रोजन लुप्त हो जाती है।

विषाक्त / प्रदूषित वायु से बचने के लिए प्रति विषके रूपमें लाक्षा, हरिद्रा, अतीस, हरीतकी, मोथा, हरेणुका, इलायची, दालचीनी, तगर, कूठ और प्रियंगु आदि द्रव्योंको अग्नि में जलाकर, उससे उत्पन्न धूम के द्वारा वायुको शुद्ध करें। 400 वर्गमीटर क्षेत्रके लिए 4-5 मिनट में 16 आहुतियों द्वारा होने वाले दैनिक अग्निहोत्रसे वायु प्रदूषण से मुक्त हो जाती है।

सुश्रुत संहिता (कल्पस्थान, 5/68-73) में जटामांसी, हरेणु, त्रिफला, शोभांजन, आदि चीजोंको कूट-पीसकर पित तथा शहद के साथ लेप बनाकर यदि भेरीया नगाड़ेपर लगा दिया जाए तो बजाने से विष शीघ्र नष्ट हो जाता है। तोरण, पताका आदि में लगाने से भी विष दूर हो जाता है।

आकाश – मंडल शब्द :

पंचमहाभूतों में आकाश अंतिम तत्व है, परंतु उत्पतिक्रम में प्रथम है। ऋग्वेदके मंत्र दृष्टाऋषि वशिष्ठ ने बृहस्पति देवता युक्त मंत्र में गाया है कि आकाशका रूप नहीं है, किंतु वायु आदिका आवासीय केंद्र है। सर्वव्यापक होने से आकाश सभी में है तथा निरूप निरवयव होने से सबका आश्रय स्थल है (ऋ. 7/97/6) व्योमके यजुर्वेद में 16 प्रकार के स्तर बताए गए है (यजु.14/2/3)। उपनिषदकारने विद्युदाकाश आदि पांच प्रकार के आकाश बताए हैं। आधुनिक वैज्ञानिकोंने आकाश केट्रापोस्फियर आदि पांच विभाजन किए हैं। वैदिककोश निघंटु एवं अमरकोश में आकाश के 16 नाम गिनाए हैं। शब्द की सिद्धि में कणाद मुनिने कहा है कि शब्द पृथ्वी आदि चार भूतों, आत्मा और मनका गुण न होने के कारण आकाशका चिन्ह है। निघंटु में वाणी इंद्रिय और उसके कार्य शब्द को मिलाकर 57 नामों का उल्लेख है। अमरकोशने शब्द के ध्वनि, निनाद आदि 17 नाम गिनाए गए हैं। प्रचंड वचनों को विष-निवारक कहा गया है (अथर्व,

5/13/3)। सूक्ष्म ध्वनि वाला शंखरोग जनक प्रदूषण से बचाए। बाजे और ढोल – नगाड़ों से भयंकर प्रदूषण भी नष्ट हो जाते हैं (अथर्व, 5/20, 5/21)। चाणक्यने भी शत्रु द्वारा किए विष-प्रयोग से बचनेके उपायों में से एक उपाय औषधिलिप्त बाजेका बजाया जाना भी बताया है (कौटिल्य अर्थशास्त्र, 14/11/12)। ध्वनि के दो भेद-नाद और शब्द हैं। नादके पुनःदो भेद- आहत और अनाहत कहे गए हैं (संगीतरत्नाकर, 1/2/3)।

ध्वनि प्रदूषण :

आधुनिक पर्यावरण विद्अवांछित ध्वनिको ध्वनि प्रदूषण मानते हैं। इसके लिए वे उर्दू शब्द 'शोर' का प्रयोग करते हैं। शोर प्रदूषण का अर्थ है वायु मंडल में उत्पन्न की गई अवांछित ध्वनि, जिसका मानव व अन्य प्राणियों के श्रवण तंत्र और स्वास्थ्यपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संस्कृत के वैयाकरणों ने इसपर अत्यधिक गंभीर चिंतन किया है और उन्होंने संवृतः,एणीकृत आदि 16 प्रकारके ध्वनि प्रदूषणपर प्रकाश डाला है (व्याकरण महाभाष्य, चारूदेव शास्त्री, पृ. 47)। आज प्राकृतिक स्रोतोंके अतिरिक्त कृत्रिम स्रोत औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण यह समस्या विकाराल होती जा रही है। उद्योग – धंधे और मशीनें, स्थल तथा वायु परिवहन के सघन, तीव्र ध्वनि वाले मनोरंजन एवं सामाजिक क्रिया कलापों को अनुशासित एवं नियंत्रित करना आवश्यक है, तभी पर्यावरण को स्वस्थ और पुष्टिकारक बनाया सकता है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव :

ध्वनि प्रदूषण हाइड्रोजन बमसेभी खतरना कहै। इनमें अंतर केवल सहसा और निरंतरता का है। 190 डेसिबलका शोरस्टील गर्डर के रिबेटतोड़ सकता है। आदमी 150 डेसिबलका शोर तनिकभी सहन नहीं कर सकता। तीव्र दर्दका शोर 130 डेसिबल होता है। हवाई जहाज की उड़ान – उतारका शोर 120 डेसिबल होता है। कार-स्कूटर – बसका शोर 120 डेसिबल। खेतोंकी बहती हवाका शोर 10-

15 डेसिबल होता है। स्वास्थ्यकर ध्वनि 30 डेसिबल होती है। सतत्शोर में काम करनेवाले लोग चिड़चिडे और असामाजिक हो जाते हैं।

ध्वनि - शोधन :

ध्वनि – शोधन का अर्थ है, उसका संतुलित प्रयोग। पर्यावरण में ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव रोकने के लिए अग्नि में सुगंधित पदार्थ आदि को होमने के लिए कहा है (ऋग्वेद, 3/30/16)। मौन रहकरभी उसका श्रेष्ठ उपाय किया जा सकता है (ऋग्वेद, 1/162/15)। आधुनिक पर्यावरण विदोंने ध्वनि-प्रदूषण को निंयत्रित करने के लिए हॉर्न आदि पर प्रतिबंध लगाने आदि के आठ सूत्र सुझाए हैं।

उपसंहार:

वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अन्तरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के निर्देशों के अनुसार जीवन व्यतीत करनेपर पर्यावरण-असन्तुलन की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती। वैदिक संस्कृतिमें प्रकृति प्रेम और उसका संरक्षण एक महत्वपूर्ण कार्य है। भूमिको प्रदूषण से बचाने के लिए हरियाली के प्रयोग की ओर संकेत किया गया है। नदियां प्रदूषण रहित हों, ऐसी उदात्त कामना की गई है। जल और वायु शुद्धि के लिए वनौषधि और यज्ञ को उपयुक्त माना है। आकाशीय शब्दकी तारता, तीव्रता अथवा मंदताका प्रभाव पर्यावरणपर पड़ता है। संतुलित प्रयोग एवं मौन साधना तथा वाणी के संयमसे किसीभी प्रकार की तीव्र ध्वनिका विस्तार रोका जाना चाहिए। निष्कर्षतः क्रियात्मक- अध्यात्मका परिपालन, विरासत की सुरक्षा और तृष्णापर अंकुशल गाकर ही पर्यावरण को बचाया जा सकता है। आज जरूरत है। प्रदूषण रहित तकनीक की। विवादहीन प्रगति ही सही विकास है। आज पूराविश्व पर्यावरण प्रदूषणपर चिंतन कर रहा है। हम आशा करते हैं कि आनेवाली सदी प्रदूषण रहित पर्यावरण की सदी होगी।

संदर्भ ग्रंथ :

1. वैदिक साहित्य का इतिहास Dr Jaidev Vedalankar Publisher: New Bharatiya Book Corporation. Edition: 2018
2. वैदिक साहित्य का इतिहास. By: Dr. Raghuveer Vedalankar. चोखम्भा ओरियन्टालिया Edition 2017
3. वैदिक साहित्यका इतिहास. डॉ. गंगासाई प्रेमी. साहित्य सरोवर. तृतीय संस्करण 2019
4. वैदिक साहित्य का इतिहास. खंड १ Contributors: शर्मा, नीतू · तिवारी, नीरज · मिश्र, संकल्प. प्रकाशन इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्लई2020

***

‘द्यौ: शान्ति: अन्तरिक्ष शान्ति:’

प्रा. गणेशकुमार सोपानराव पेठकर
संजीवनी महाविद्यालय, चापोली ता.चाकुर, जि.लातुर, पिन -४१३५१२.

संस्कृत भाषा सर्वात प्राचीन भाषा आहे. संस्कृत साहित्यामध्ये पर्यावरणाची स्मृति सर्वप्रथम दिसून येते. संस्कृतच्या आरंभिक ग्रंथांमध्ये आरण्यक ग्रंथ आपल्याला सृष्टी विषयक ज्ञान पुरवतात. आपल्या संस्कृतीतील या पर्यावरणस्नेही वृत्तीचे दाखले संस्कृत साहित्यात अनेक ठिकाणी आढळतात. **‘द्यौ: शान्ति: अन्तरिक्ष शान्ति:’** या यजुर्वेदातील शांति मंत्रात पृथ्वी पासून अंतराळापर्यंत सगळीकडे जैविक – अजैविक घटकात संतुलनाची प्रार्थना केली आहे. ऋग्वेदात पृथ्वीला आई आणि आकाशाला पिता म्हणत सर्व सजीवांच्या रक्षणाची कामना केली आहे. अथर्ववेदात देखील **‘माता भूमिः पुत्रोऽहंपृथिव्याः’** म्हणत पृथ्वीवरील सर्व जीवांना सहोदर आई मानले आहे. **‘माहिंसी पुरुषं जगत’** म्हणजे स्वतःच्या स्वार्थासाठी कुठल्याच प्राण्याची हत्या करू नये अशी वेदांची आज्ञा आहे.

पर्यावरण म्हणजे काय? **'परितो आवरणम् पर्यावरणम्'** अर्थात आपल्या आजूबाजूला जे काही आवरण आहे. ते सर्व र्यावरणाशी संबंधित आहेत. पर्यावरणाचे मुख्य घटक म्हटले तर हवा, पाणी, आकाश, पृथ्वी आणि अग्नि हे पाच मुख्य घटक आहेत. पंचमहाभूतांनीच जग निर्माण झालेले आहे. यातच विलीनपण होणार आहे. सजीवांच्या नैसर्गिक परिसरात पर्यावरण असे म्हणतात. वैज्ञानिक पारिभाषिक कोशानुसार पर्यावरण या संज्ञेत वनस्पती अथवा प्राणी ज्या नैसर्गिक परिसरात जगतात वाढतात

तेथील हवा जमीन पाणी इतर सजीव पर्जन्यमान उंची तापमान इत्यादी सर्वांचा समावेश होतो. जीवनातील काही घटक आपल्या बरोबर असतात. काही संपादन करावे लागतात. देह धारणेसाठी आवश्यक घटकांचा अभाव निर्माण झाला की आपणास जाणवते. माणसाला किंवा प्राण्याला तहान भूक लागते. वस्तूत माणसाला सर्वाधिक हवी असते ती हवा ती सहज उपलब्ध असल्यामुळे व तिचा साठा करावा लागत नसल्यामुळे तिचा मुद्दाम विचार केला जात नाही. शरीरातील प्रत्येक पेशीला प्राणवायू लागतो तो यथा प्रमाण मिळाला नाही तर सगळेच जीवन व्यापार मंदावतात.

हवे तेवढेच पाण्याला ही महत्त्व आहे रक्ताचे प्रवाही पण पाण्यावर अवलंबून आहे. शरीरातील अनावश्यक द्रव्याचे उत्सर्जन घडावे. यासाठी रिकाम्या पोटी पुरेसे पाणी प्यावे. मराठी विश्वकोशानुसार सर्व सजीव व त्यांच्या भोवतीचे पर्यावरण एकात्मपणे परस्पराशी संबंधित असतात. सजीवांना त्यांच्या जीवन संघर्षासाठी आणि उत्क्रांतीमध्ये सभोवतालच्या पर्यावरणाशी जुळवून घ्यावे लागते. असे अनेक अनुकूल असे बदल करावे लागतात. जेस जीव आपल्यात बदल घडवून आणण्यात कमी पडतात. किंवा काही कारणास्तव ते स्वतःमध्ये बदल घडवू शकत नाहीत ते नष्ट होतात. जो बदल स्वीकारतो तोच येथे तग धरून राहू शकतो. पर्यावरणाचे रक्षण करणे सर्वांची जबाबदारी आहे. पर्यावरण संरक्षण प्रत्येकाचे कर्तव्य आहे. इतर काही संस्कृतीत देवाने मानवाच्या उपभोगासाठीच ही पृथ्वी निर्माण केली, असे मानले जाते. भारतीय संस्कृतीत मात्र मानव हा निसर्गाचा भाग आहे आणि निसर्गाचे रक्षण करणे, ही त्याचे आद्य कर्तव्य मानले गेले आहे.

दि. ५ जून हा दिवस 'जागतिक पर्यावरण दिन' म्हणून आपण साजरा केला. पर्यावरणा विषयी जनजागृती व्हावी, पर्यावरण विषयक समस्यांची ओळख होऊन सगळयांनी मिळून त्याबद्दल उपाय योजना करायला चालना मिळावी, हा पर्यावरण दिन साजरा करण्यामागचा मुख्यहेतू. पर्यावरण म्हणजे आपल्या सभोवती असलेले जैविक (सर्वसजीव) आणि अजैविक (हवा-हवामान, पाणी, जमीन) घटकांचे आवरण. या सगळया घटकांच्या आंतर्क्रिया आणि एकमेकांवरील अवलंबिता मिळून परिसंस्था तयार होते. मानव देखील याच पर्यावरणाचा एक घटक. पण इतरांपेक्षा अधिक बुद्धी असलेल्या मानवामुळे पर्यावरणाला धोका निर्माण होतो आहे. म्हणूनच जगभर पर्यावरणाच्या रक्षणासाठी उपाययोजना व चर्चा सुरु झाली आहे.

ऋग्वेदात वनानि नः प्रजहितानि (ऋ८.१.१३) –

जंगलाची तोड न करण्या विषयी म्हटले आहे. पद्मपुराणात 'दशपुत्रसमोद्रुम:' म्हणजे एक झाड दहा अपत्यां सारखे समजावे असे म्हटले आहे. बृहत्संहिता, चरकसंहिता, आयुर्वेदीय ग्रंथ, अथर्ववेदांत ठिकठिकाणी विविध वृक्ष व त्यांचे आरोग्य, परिसरावर होणारे कल्याणकारक परिणाम यांचे उल्लेख येतात. स्कंद पुराणात म्हटले आहे की,

'अश्वत्थमेकं पिचुमंदमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिंचिणीकम्।
कपित्थबिल्वामल मलकत्रयंचपञ्चाम्रवापी नरकं न पश्यते॥'

म्हणजे वड, पिंपळ, कडुनिंब, चिंच, बेल, आंबा, कवठ व अशोक ही झाडे लावून त्यांचे संगोपन करणाऱ्याला कधीच नरक

यातना होत नाही. संस्कृत साहित्यातील अनेक नायिका झाडांची आपल्या मुला प्रमाणे काळजी घेत असलेली दाखवले आहे.

शतपथ ब्राह्मणात **'अमृत वा आपः'** म्हणत पाण्याला पृथ्वीवरील अमृत समजले आहे. यामुळे जल प्रदूषण करणे महापाप समजले आहे.

'सुकूपानां तड़ागानां प्रपानां च परंतप।

सरसां चैव भैत्तारो नरा निरयगामिनः॥' (पद्मपुराण९६.७.८)

नदी, विहिरीत प्रदूषण करणाऱ्याला नरक वासाची शिक्षा आहे. **'नु वायोः अमृतं वि दस्येत्' (ऋग्वेद६.३७.३)** या ऋचेत वायू मधील अमृत म्हणजे ऑक्सिजनचे प्रमाण कमी न होऊदेण्या विषयी प्रार्थना आहे. फक्तजल, वायू, अमी, भूमी प्रदूषणच नाही, तर ध्वनि प्रदूषणा विषयी देखील वेदात विचार आढळतो. यजुर्वेदात **'द्यां मां लेखीरन्तरिक्षंमा हिंसीः।'** म्हणजे आकाशतत्त्वाची उच्च ध्वनी द्वारा प्रदूषण करण्याचा विरोध केला आहे. ऋग्वेदाच्या ७.५० सूक्तात विविध घटकातील विष म्हणजे प्रदूषण हरण करण्याची प्रार्थना केली आहे.

संस्कृत पासून अर्वाचीन संस्कृत साहित्यापर्यंतच्या सर्व लेखकाने आपल्या लिखित रचनांमध्ये प्रकृतीच्या वर्णनाचे हेच उद्देश्य होते की वर्तमानकाळात मनुष्य त्यातून प्रेरणा घेऊन आपल्या जीवनाची सुरक्षा करेल. वेदा अतिरिक्त नाटक, महाकाव्य, खंडकाव्य आणि गीतीकाव्य या मध्येपण अनेक वनस्पतींचा उल्लेख दिसून येतो. रामायन आणि महाभारत लौकिक साहित्यात सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य मानले जाते त्यात वाल्मिकी द्वारा

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वम् आगमः शाश्वती समाः।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहीतम् ॥

संस्कृत साहित्याचे अश्वघोष, भारवी, कालिदास, माघ आदि महाकाव्यकारांनी भास, भवभुती, राजशेखर, मुरारी आदि नाटककारांनी आणि दंडी, सुबंधू, बाणभट्टा आदि गद्यकाव्यकारांनी आपल्या रचनांमध्ये यथेष्ठ प्रकृतीचे वर्णन समाविष्ट केलेले आहेत.

संपूर्ण संस्कृत साहित्य मानव जीवनावर आधारित असल्या कारणाने साहित्यामध्ये सर्वत्र पंचमहातत्वांनी निर्मित सृष्टी प्रत्येक मनुष्य जीवनासाठी आवश्यक असलेले पंचमहाभूत त्यांचा सांभाळ कसा करावा. संस्कृत साहित्यात नाटककार काव्यकार यांनी सर्वत्र स्पष्ट उल्लेख केलेला आहे. पर्यावरणा संबंधी वेदांमध्ये अनेक सूक्त मिळतात अथर्ववेदात भूमी सुक्त ऋग्वेदात कृषी सुक्त यजुर्वेदात ऊषससूक्त, पुरुषसूक्त आदी अनेक सुक्तांमध्ये आणि मंत्रांमध्ये सर्वत्र पर्यावरणाशी संबंधित उल्लेख मिळतो. सृष्टी उत्पत्ती मध्ये पंचमहाभूत **'इमानी पंच भूतानि पृथ्वी आकाश वायू आप: ज्योतिषी' ऐत. उपनिषद** यात पृथ्वी, आकाश, वायू, पाणी आणि अग्नी याचा अधिक वापर केल्याने पर्यावरणात परिवर्तन होत असते. संस्कृत साहित्यात पर्यावरण संबंधात धर्म नियम केलेले आहेत. त्यामध्ये प्रत्येक वस्तूला आपापले कार्य उपयोग व्यवस्थित करण्या संदर्भात येथे नियम केलेले आहेत. उदाहरण पाणी पाण्याचे यथा योग्य उपयोग करावे. पाण्याचा जास्त उपसा केल्याने पृथ्वीवरील मानव जाती आणि प्राण्यासाठी घातक आहे. पाण्याचा उपयोग यथा योग्य केला पाहिजे. **जलमेव जीवनम्** अतः योग्य उपयोग केला पाहिजे.

महाकवी कालिदास आणि पर्यावरण या विषयावर अवलोकन केल्यावर कळते की किती घनिष्ठ संबंध होता. कालिदासाचे रघुवंश महाकाव्यामध्ये आश्रमाचे वर्णन, प्रकृती सौंदर्य,

नंदिनीसेवा इत्यादी अनेक प्रसंग बघायला मिळतात. मेघदूत यात यक्ष आभाळाला आपला दूत करून पाठवत असताना किती सुंदर प्रकृतीचे वर्णन केलेले आहे. तसेच प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुंतलम्यात आश्रमाचे वर्णन, नदीचे वर्णन, शकुंतला आणि आश्रमाच्या वर्णनात प्रकृतीचे सुंदर असे वर्णन बघायला मिळते. तसेच मालविकाग्नी मित्र या नाटकाच्या तिसऱ्या अंकामध्ये मालविकेच्या पदाघाताने अशोकाच्या झाडाला पुष्पित करण्याच्या क्रियेला केंद्रित करून लिहिलेला आहे

निष्कर्ष -

निष्कर्षतः भारतात मात्र अगदी प्राचीन काळापासून पर्यावरणाचा विचार केलेला आढळतो. भारतीय संस्कृती ही पर्यावरण पूरकच आहे. निसर्गातील झाडे, नद्या, पर्वत, भूमी, सूर्य, चंद्र इत्यादी घटकांना देवता स्वरूप मानून त्यांचे पूजन, रक्षण करणे ही भारतीय संस्कृतीची विशेषता आहे. संस्कृत साहित्य आणि पर्यावरण या विषयावर बघितलं तर वेद, ब्राह्मणग्रंथ, आरण्यग्रंथ, उपनिषद, लौकिक संस्कृत साहित्य आणि वैदिक साहित्यात पूर्णतः प्रकृती विषयाला धरूनच चर्चा पाहायला मिळते. कारण प्रत्येक संस्कृतच्या ग्रंथामध्ये मानव जीवन हे मुख्य केंद्रबिंदू आहे. आता मानव आधारित असल्या कारणाने पृथ्वीवरील सर्व घटकांचे तिथे समावेश असणारच प्रत्येक घटक हे मानवासाठी आणि जीवजंतूसाठी परमेश्वराने रचलेले आहे. त्याचा वापर यथोचित केल्याने पर्यावरण दूषित होणार नाही. पर्यावरण जपण्यासाठी आपल्याला प्रत्येक वस्तूचा वापर यथोचित केला पाहिजे. असं संस्कृत साहित्यामध्ये 'प्रकृती हेच सर्वस्व' आहे. अस समजून मनुष्य जीवनाचे नियम सांगितले आहेत. इतर काही संस्कृतीत देवाने मानवाच्या

उपभोगासाठीच ही पृथ्वी निर्माण केली, असे मानले जाते. भारतीय संस्कृतीत मात्र मानव हा निसर्गाचा भाग आहे आणि निसर्गाचे रक्षण करणे, ही त्याचे आद्यकर्तव्य मानले गेले आहे. **'तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा'** या उक्ती प्रमाणे मानवाने निसर्गाला न ओरबाडता, त्याचे रक्षण करत सुख उपभोगावे, ही आपल्या ऋषींची अपेक्षा आहे. झाडे लावणे, पाणवठे तयार करणे, प्रदूषण न करणे याला देखील यज्ञ मानले गेले आहे. यातून पाऊस नियमित पडून अन्न निर्माण होते, असे गीतेत म्हटले आहे. भारतीय संस्कृतीतील हे पर्यावरण पूरक विचार आपल्या सर्वांच्या आचरणात यावे, हीच सदिच्छा...!

संदर्भ-

1. www.google.com
2. संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण, प्रो. सुषमा कुलश्रेष्टा, प्रोलक्ष्मी शुक्ला
3. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण का महत्व, डॉ. संतोष कुमार मिश्रा.
4. संस्कृत संस्कृती और पर्यावरण, डॉ. प्रवेश सक्सेना.
5. https://hi.m.wikipedia.org

***

Lkr rdkjkekP;k vHkxkrhy fulx o i;koj.k

Ikk- Mk- jke /kkjkIjdj

ejkBh foHkkx ie[k] 'kkghj v..kkHkkÅ IkB egkfo|ky;]Rkk- e[kM ft- uknM & 431715

vkfne dkGkikIu fuIxkp vfLrRo iFohrykoj vkg- tU;k dkGkikIu tx ipegkHkrkuh cuy vkg v'kh /kkj.kk vktgh vfLrRokr vkg- iFoh]mnd]vXuh]ok;| vkf.k vkdk'k gh rh ipegkHkr vkgr- Hkkjrh; ILdrhr ;k ipegkHkrkuk vuU;lk/kkj.k egRo vkg- brdp u0g rj ;k ipegkHkrkuk b'ojkp #i eku.;kph ikphu ijijk vkiY;k ILdrhr #< vkg- R;keG R;kuk vR;r egRokp o iT;uh; ekuy tkr- fuIx gh ekuoh vfLrRokyk feGkyyh Inj n.kxh vkg- Hkkfrd tx o ekuoh thou ;kpk ijLij Ic/k vIrk- ek.kI eGkr fuIxkpk ?kVd vkg- ijr Lor%P;k c/nhpkr;keG R;ku ipM Hkkfrd ixrh dyh vkf.k ghp ixrh R;kP;k iF;koj vkyh- Eg.kt fuIxkoj ekr dj.;kP;k g0;kIkru ^Ik;koj.kkpk Úgkl * R;kyk Hkkxkok ykkxrk vkg-

vkti;r fuIx ek.kIkyk tx.;kph meh nr vkyk vkg- vkdk'k]rkj]un;k] okj] ior] Mkxj] nÚ;k] okj] _r] Ik'k] i{kh] mUg] okjk] ikÅI bR;knh fuIxkP;k Ikfu/;kr ek.kIku Lor%ph ixrh dyh vkg- ek.kIkP;k 'kkjhfjd] ekufId] ekofud] o ckf/nd ixrhyk fuIx Ikg;Hkr Bjr vkyk vkg- HkDrh] v/;kRe o thoueY;kph f'kdo.k g Ir rdkjkekP;k ,d.kp vHkxkp Ikj vkg- R;kP;k vHkxkru tk.ko.kkjk fuIx o i;koj.k ;kpk vH;kI dj.;kpk dyyk gk i;Ru-

Ir rdkjke egkjktkuh o{kkp egRo Ikx.kkjk vHkx lokuk ifjfpr vkg- nIÚ;k ,dk vHkxkr r tho f'koRokp ,drRo ixV djrkr &

^^r#oj chtkikVh
Ckht r#ojkloVh A
rl rEgkvkEgk tky
,dh ,d lkekoy AA** rdkjke xkFkk &1718

chtkP;k ikVkr o{k o o{kkP;k ikVkr cht vlr rl vkiY;k ngkr b'ojkp vfLrRo vlr vl r Eg.krkr- o{kkp egRo lkx.kkjk vHkx &

^^flpu dfjrk eG A
Ok{k vkyko ldG A
Ukdk iFkdkp Hkjh A
iMk ,d eG /kjh A
rdk Eg.k /kkok A
vkg i<jh folkok AA** xkFkk 2028

ikolkP;k ik.;kokpu ihd ;r ukgh rlp fpÙk'k/nh f'kok; ck/k gkr ukgh &

^^rlh fpÙk'k/nh ukgh A
rFk ck/k djhy dkb A
rdk Eg.k thoufo.k A
ihd u0g u0g tk.k AA** xkFkk 765

doG ik.kh ikgu rgku tkr ukgh- R;kph lkBo.k dyh rj R;kp iUgk iUgk mi;kx gkrk- HkDRkh l/nk v'khp vlr &

^^n[kkfu thou tfj tk; rku A
Rkjh dk lkVo.k ?kjk?kjh A
fgr rjh gk; xkrk vbdrk A
tfj jkg fpÙkk n< Hkko A** xkFkk 342

HkDRkhp egRp ifriknu djrkuk lr rdkjkekuh tykp Eg.ktp ik.;kph mnkgj.k tkLr leidi.k ekMyh vkgr- R;kP;k xkFkrhy vHkx d- 997] 1150] 3461] 1758 bR;knh vHkxkru gh ik.;kph mnkgj.k vkyh vkgr-

^fFkYyjhp ik.kh* v'kh ,d ifrek rdkjkekP;k vHkxkr ekB;k ekfedru vkyh vkg- fFkYyjh Eg.kt ik.;kp Mcd-

McD;krhy ik.kh ghu ekuy tkr R;ku rgku Hkkxr ukgh vkf.k lek/kkugh gkr ukgh &

^^lnjh g noh nor A
dk.k rh ith Hkrdr A
vkiY;k ikVk th jMr A
ekxrh f'kr vonku A

---

dk; r fFkYyjhp ik.kh A
vkB u fHkt u fQV /k.kh A** xkFkk 621

LokFkh ek.kl no norkph itk Lor%P;k LokFkk lkBh djrkr vlk mijkf/kd ljgh ;Fk 0;DRk gkrk- LokFkh lrkojgh lr rdkjkekuh ;Fk Vhdk dyh vkg-

lkk.;kP;k lnHkkr rdkjke egkjktkP;k vHkxkr vud ifrek vkY;k vkgr- ty] /kkjk] vk<k] foghj] unh] ukyk] ik#l] Fkc] rjx] ygjh] iokg] ij] Mkg] lxe] Hkkoj] dkjt] fFkYyjh] FkMok] ckoh] okgkG] >jk] lfjrk] xxk v'kk vud ifrek tylo/kukP;k ckcrhr lr rdkjkekP;k vHkxkr vkY;k vkgr- xxp ikfo=; o J"Br r vk/kkjf[kr djrkr &

^^ikDrukP;k ;kx vkG'kkojh xxk A
Luku dk; txk d# u; A
Hkkok#< rdk enk foBkckph A
u euh r;kph rkM dkGh AA** xkFkk 4117

xxktG fueG vlr- lrkp fpÙkgh vlp fueG vlr-

^^lokxh fueG A
fpÙk tl xxktG AA**

fdok&

^^xxktGk ikgh ikBh ikV ukgh A
Rkdk Eg.k rl tk.kk lrtu AA** xkFkk 1796

Lkr rdkjkekP;k vud vHkxkr fulxkP;k vk/kkjku ekuoh thoueY; letu lkfxryh vkgr- oGilxh ek.klkP;k pdhP;k okx.;koj rdkjkekuh dBkj Vhdk i.k dyh vkg- fulx vkf.k i;koj.kkrhy gtkjk xk"Vhph mnkgj.k R;kP;k vHkxkr lgti.kku ixV gkrkr- 'krhokMh] fofo/k >kM] QG] Qy] e/kek'kk] oupj] i{kh] typj] ik.kh] vkdk'k] vXuh] ok;]ekrh] dVc v'kk vl[; ckch rdkjkekP;k vHkxkr lgxR;k ;rk o HkDr vkf.k ekuoh ukr ;kp egRo lkxu tkrkr-

fulx vkf.k fo'okpk fuekrk ,dp vkgr- b'oj pjkpjkr Hkjyyk vkg gh ckc lr rdkjkekuh vkiY;k ,d.kp vHkxkr 0;Dr dyh vkg- lr rdkjkekuh v/;kREkkP;k ek/;ekru ekuoh eukP;k mUu;ukp dke dy vkg- lR;] ie] lnkpkj] lnfopkj] vkRel;e] uhfreÙkk] thou/;; b- eY; lektkr #tfo.;kp dk; dy vkg- FkkMD;kr ekuorkokn vkf.k v/;kfRedrk] fulx vkf.k HkDrh ;kpk lxe lr rdkjke egkjktkP;k vHkxkr ekB;k iek.kkr fnlrk-

lnHk xFk %

1- Lkr rdkjkeckckph xkFkk& ljdkjh ir
2- lr lkfgR;kph lkekftd QyJrh & x-ck- ljnkj
3- ejkBh lkfgR;krhy e/kjkHkDrh & i-u- tk'kh
4- lr lkfgR;krhy lk;koj.k fopkj & jkepn n[k.k
5- rdkjke opuker & jk-n-jkuM
6- ejkBh lr dof;=h & ek- d- ;kno
7- lk;koj.kkojhy bVjuV lkfgR;

***

"पर्यावरण आणि शाश्वत विकास"

(Environment and sustainable Development)

प्रा. कैलाश दशरथ कपाटे

शिवाजी कनिष्ठ महा. बारड.

पर्यावरण आणि शाश्वत विकास यामध्ये समन्वय साधने आजच्या आधुनिक काळाची गरज बनली आहे. कारण विकास ही संकल्पना एकांगी अंगाने आज प्रत्येक राष्ट्र वापरताना दिसते. सामान्यपणे विकास म्हणजे त्यासाठी एक सामान्य मापदंड म्हणून एखाद्या देशात राष्ट्रीय उत्पादन होय. ज्या देशाची राष्ट्रीय उत्पादन अधिक असते. जसे अमेरिका, रशिया, इंग्लंड इत्यादी, तर अशी राष्ट्रीय विकसित झाली. असा आपण सामान्यपणे अर्थ काढतो. परंतु देशातील उत्पादनात वाढ होताना त्या राष्ट्रातील पर्यावरणाची किती प्रमाणात हानी झाली याबद्दल मात्र कोणत्याही देशात बोलले जात नाही. शाश्वत विकास आणि पर्यावरण यांचा मेळ घालताना मात्र विकासाची मापदंड ठरवताना आर्थिक विकास साधताना पर्यावरणाची किती हानी झाली, याचाही विचार पर्यावरण आणि शाश्वत विकासात करावा लागतो.

शाश्वत विकास (sustainable Development) म्हणजे" जो विकास चालू पिढीच्या गरजा, पुढील पिढ्यांच्या गरजा, धोक्यात न आनता पूर्ण करतो. अशा विकासाला शाश्वत विकास असे म्हणतात." जो विकास मानवाच्या सध्याच्या व भविष्यातील गरजांची संतुलित पूर्ती करतो, तो शाश्वत विकास होय. यावरून शाश्वत विकास आजचा नेमका अर्थ आपणास लक्षात येतो. आजच्या काळाची आपण विकासाची एकांगी संकल्पना वापरतो ती चुकीची आहे. शाश्वत विकासामध्ये पर्यावरण विषयक आणि घटकांचा देखील समावेश करणे गरजेचे आहे. पर्यावरणाची अंशतः अथवा पूर्णतः

हानी करून आपण जर विकासाचा मापन ठरवत असू, तर तो अगदी चुकीचा असून त्यामुळे भविष्यातील येणाऱ्या आपल्या पिढ्यांची आपण मोठ्या प्रमाणात हानी किंवा नुकसान करत आहोत. त्यांच्या गरजा आपण स्वतःहून नष्ट करत आहोत. एवढेच नाही तर, त्यांच्या पुढे पर्यावरण विषयक अनेक समस्या निर्माण करत आहोत.

संशोधन पद्धती:-

या संशोधन पेपर मध्ये द्वितीयक माहिती स्त्रोतांचा वापर करण्यात येणार आहे. यात पर्यावरण विषयक विविध पुस्तके, मासिके, वर्तमानपत्रे यामधून माहिती संकलित केली आहे. तसेच विकासाच्या विविध संकल्पना, विकासातील घटक, यासंदर्भातील माहिती, विविध पुस्तकातून संकलित केली आहे. तसेच पर्यावरण व शाश्वत विकास यांचा मेळ यांच्यातील माहिती वेबसाईटवरून संकलित केली आहे. तसेच विविध वर्तमानपत्राचा ही संकलित माहितीचा आधार घेतला आहे.

संशोधन उद्देश :-

1.विकासाचा अर्थ जाणून घेणे. 2.विकासाचा पर्यावरणाशी मापक मेळ घालने.3. शाश्वत विकासातील वास्तविक घटकांचा विचार करून त्यांचा अर्थ लावणे.4.पुढील पिढ्यांसाठी पर्यावरण संतुलन साधने.

गृहीतके :-

1.मोठ्या प्रमाणात पर्यावरणाची हानी होत आहे. त्यास काळा घालने.2.शाश्वत विकास संकल्पना स्पष्ट करून, तिची जाणीव सामान्य जनं माणसात निर्माण करणे.3. विकास आणि पर्यावरण यांचे संवर्धन करून, विकासाची योग्य वेळनिर्माण करणे.

शाश्वत विकासाविषयक विविध मुद्दे :-

1.शाश्वत विकास गरज आणि आव्हाने :-

आजच्या आधुनिक काळात उद्योग व दळणवळण यांची झपाट्याने प्रगती झाली आहे. पण त्याचबरोबर पर्यावरणाचा ऱ्हास होण्याचे प्रमाण देखील वाढत चाललेले आहे. आर्थिक विकास हा नैसर्गिक घटकावर दुष्परिणाम करणारा व त्यात गट निर्माण करणारा नसावा. परंतु आजचे चित्र मात्र विचित्र स्वरूपात निर्माण झाले असल्याचे आर्थिक विकासाबरोबर पर्यावरणाची हानी देखील मोठ्या प्रमाणात निर्माण झाली आहे. शाश्वत विकासाची संकल्पना प्रथम युरोपमध्ये निर्माण झाली. जंगल टिकावे या उदात्त भूमिकेतून सर्वप्रथम 'शाश्वत' (sustainable) हा शब्द वापरला. जंगलाची पुनर्निर्मिती करण्यासाठी ज्या प्रमाणात जंगलाचे प्रमाण नष्ट झाले आहे, त्या प्रमाणात नवनवीन वृक्षांची लागवड करून पर्यावरण विषयक झालेली झीज भरून काढता येते. कारण मोठ्या प्रमाणात खनिज तेल खान काम यांचे उत्पादन झाल्याने पर्यावरण विषयक घटकांची मोठ्या प्रमाणात जीज झाली, ती भरून काढण्यासाठी वृक्ष लागवड करणे, त्या वृक्षांची लागवड करणे, ज्या व्रक्षापासून वन औषधी निर्मिती होईल कारण जगाची लोकसंख्या अगदी झपाट्याने वाढत चालेली आहे.

2. शाश्वत विकासात व्यक्ती व समाजाची भूमिका :-

शाश्वत विकासात व्यक्ती व समाजाची भूमिका अत्यंत महत्त्वाची ठरते. कारण विकासाच्या प्रक्रियेत पर्यावरण विषयक आणि घटकांची मोठ्या प्रमाणात जी झीज झालेली असते, ती पर्यावरणाची झालेली झीज भरून काढण्यासाठी, व्यक्ती आणि समाजाची भूमिका अधिक महत्त्वाची असते. पर्यावरण विषयक घटकांची संवर्धन व विकास साधण्याची भूमिका ही कोणत्याही एका देशाच्या शासनाची नसून,ती जगातील प्रत्येक व्यक्ती आणि समाज त्यांची मानसिकता विचार कसे आहेत. यावर देखील शाश्वत विकास आधारलेला असतो. पर्यावरण टिकेल तरच व्यक्ती आणि समाज व्यवस्था टिकेल ही प्रत्येकाची वैयक्तिक जबाबदारी आहे. या धोरणातून प्रत्येकाने दक्ष राहणे गरजेचे आहे. व्यक्ती व स्वतःचा आर्थिक विकास साधण्यासाठी मोठ्या प्रमाणात पर्यावरणाची हानी

करताना दिसत आहे. निसर्गातील मानवाचा अति हस्तक्षेप वाढला असल्याने पर्यावरणाची झीज वाढली आहे. यातून हवामान दूषित झाले, जागतिक तापमान वाढले, यातून ध्रुवीय प्रदेशातील बर्फ वितळण्याचे प्रमाण अधिक वाढले आहे. तसेच आजच्या आधुनिकरणाच्या प्रक्रियेत शहरांचा आकार मोठ्या प्रमाणाने व झपाट्याने वाढत असताना दिसत आहे. त्यातून जंगलतोड अधिकच होताना दिसते. त्यातून नाल्यांमधील व गटारांमधील पाणी शुद्ध न करता नदीमध्ये व समुद्रामध्ये मोठ्या प्रमाणात सोडले जात आहे. ही पर्यावरण विषयक हानी होण्याची प्रक्रिया थांबणे महत्त्वाचे आहे. एकसंघपणातून समाजाने पर्यावरणाचे संवर्धन करणे गरजेचे आहे.

3. शाश्वत शेतीचा विकास साधने :-

आजच्या काळात शेतीतील उत्पादनाची वाढ निर्माण करण्यासाठी रासायनिक शेतीचा मोठ्या प्रमाणात वापर होताना दिसत आहे. त्याचे दुर्गामी परिणाम शेतीच्या मृदावर व पिकांच्या रचना पद्धती वर झाल्याची दिसत येत आहे. तसेच या रासायनिक शेतीमुळे मोठ्या प्रमाणात विविध आजारांना आमंत्रण प्राप्त झाले आहे. रोगराईचे प्रमाण वाढले आहे. कॅन्सर यासारख्या आजारांचा विळखा रसायनाच्या वापरामुळे वाढत चालला आहे. शाश्वत शेती म्हणजे पर्यावरणात सर्व घटकांचा समतोल टिकून कायम प्रकारचे उत्तम गुणवत्तेचे उत्पादन घेणारी व पर्यावरणाचे संरक्षण करणारी शेती होय. शाश्वत शेतीमुळे शेतीतील गुणवत्ता अथवा कस कायम राहतो. शेतातील उत्पादन क्षमता वाढते व पिकातील गुणवत्ता यामध्ये देखील सुधारणा होतात. शाश्वत शेती ही पर्यावरणास अत्यंत अनुकूल घटक म्हणून ओळखली जाते. शाश्वत शेती शिवाय पर्यावरणाचा विकास साधणे शक्य होत नाही.

4. शाश्वत विकासातील आंतरराष्ट्रीय संस्थांची भूमिका :-

शाश्वत विकासासाठी पर्यावरण विषयक अनेक आंतरराष्ट्रीय संस्थांची जगामध्ये स्थापना झाली. कारण आर्थिक स्पर्धेतून जगातील प्रत्येक राष्ट्र स्वतःची उत्पादनक्षमता वाढवण्यासाठी प्रयत्न करू लागले. यातून अनेक राष्ट्र पर्यावरणाकडे दुर्लक्ष करू लागली.

अशीच दुर्लक्ष श्रीमंत राष्ट्राचे झाले तर, एक दिवस वसुंधरेचा अंत पहावा लागेल. या पृथ्वीतलावरील मानवी वस्ती संपुष्टात आलेली असेल. हे जर भविष्यासाठी टाळायचे असेल तर जगातील प्रत्येक राष्ट्राने पर्यावरण विषयक व शाश्वत विकासाचा विचार करणे गरजेचे आहे. जगामध्ये संयुक्त राष्ट्र संघटनांच्या बैठकीत (UNCED) - 1992 यात179देशाच्या सरकारांनी अजेंडास्वीकृत केला. संयुक्त राष्ट्राच्या सर्वसाधारण सभेत 1992 मध्ये संयुक्त राष्ट्र संघ शाश्वत विकास आयोग (CSD The United Nations Commission on sustainable) स्थापन झाला. या परिषदेने श्रीमंत राष्ट्रांनी आर्थिक विकास साधतांना स्वतःहून पर्यावरण विषयक काही अंशी बंधने स्वतः निर्माण केली.2002 मध्ये शाश्वत विकासाशी असणाऱ्या जागतिक वचन पद्धतीचा मागोवा घेण्यासाठी जोहान्सबर्ग येथे शाश्वत विकासावरील जागतिक परिषद(WorldSummit on Sustainable Development) आयोजित करण्यात आली. तसेच 2012 मधील संयुक्त राष्ट्राची शाश्वत विकासावरील परिषद किंवा रिसोड प्लस ट्वेंटी(United Nation Conference on sustainable Development Rio +20)यात रोजगार, ऊर्जा, तंत्रज्ञान, निर्णय प्रक्रियेत पर्यावरण अर्थशास्त्राचा समावेश करणे इत्यादी घटकांना प्राधान्य देण्यात आले.

निष्कर्ष :-

शाश्वत विकासात पर्यावरण हा घटक महत्त्वाचा मानला जातो. कारण हजारो वर्षापूर्वी वसुंधरीची निर्मिती झाली. ही वसुंधरा आज पर्यंत टिकली आहे. मानवाचा इतिहास तिला माहित आहे. परंतु काळाच्या ओघात प्रत्येक राष्ट्रात निर्माण झालेल्या जीवघेण्या उत्पादनाच्या प्रक्रियेमुळे पर्यावरणाकडे अनेक राष्ट्रांनी दुर्लक्ष केले. त्याचे परिणाम जागतिक तापमान वाढ, दूषित हवा, ध्वनी प्रदूषण, ध्रुवीय प्रदेश येथील बर्फाचे वितळणे, त्यातून

पाण्याची वाढलेली पातळी, मोठ्या प्रमाणात तापमान वाढ, अनैसर्गिक ऋतुचक्र यासारखे बदल वसुंधरेमध्ये मानवाला दिसू लागले ही बदल जाणवताच वसुंधरीची मोठ्या प्रमाणावर होणारी हानी टाळण्यासाठी अनेक राष्ट्रांनी पुढाकार घेऊन जागतिक परिषदांची स्थापना करून पर्यावरण आणि शाश्वत विकास या घटकाचे महत्त्व आताजगाला पटू लागले आहे.

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. शाश्वत विकासाकडे- प्रथम आवृत्ती, महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षण मंडळ पुणे.
2. पर्यावरण शिक्षण- डॉ. प्रकाश सावंत - फडके पब्लिकेशन कोल्हापूर.
3. पर्यावरण परिस्थितीकी- डॉ.तुषारघोरपडे - आवृत्ती चौथी,2018, युनिक अकॅडमी पब्लिकेशन.
4. मानव संसाधन विकास - भूषण अहिरे व गौरी सावंत- युनिक अकॅडमी पब्लिकेशन, आवृत्ती-2018.

***